३२
तु

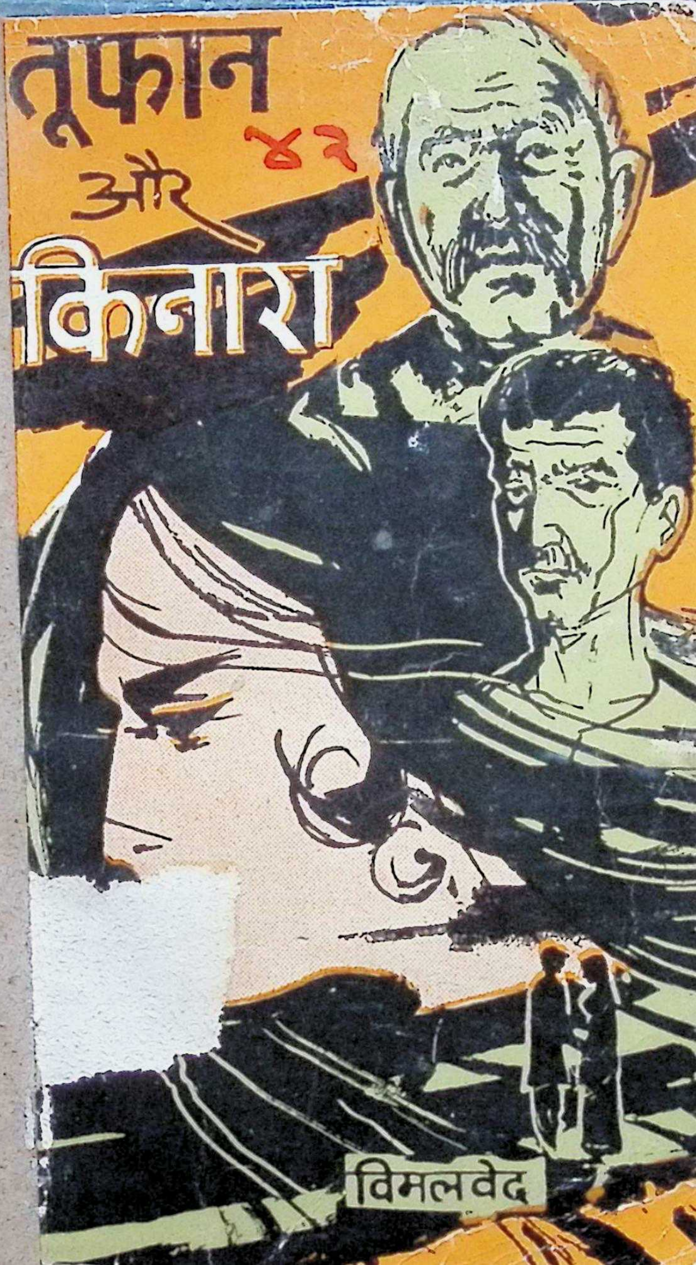
तूफान
४२
और
किनारा
विमलवेद

141

तूफान और किनारा

❖

विमल वेद

एक सामाजिक, मनो-वैज्ञानिक, भावप्रधान उप-न्यास, जिसके एक ओर स्नेह, सौन्दर्य और सादगी है तो दूसरी ओर बुराइयों के प्रति संघर्ष ।

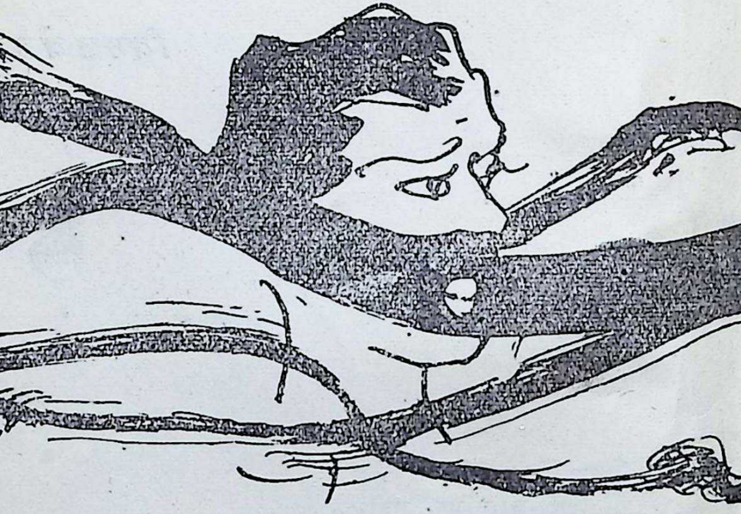

तूफान और किनारा

विमल वेद

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

वाराणसी-१

९6--TOOFAN AUR KINARA : Vimal Ved

Novel

☆

प्रथम संस्करण

१९६४

1/-

9588

प्रकाशक ‡ मुद्रक

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय ‡ दुर्गा प्रेस

पो. बॉ. नं. ७०, वाराणसी–१ ‡ पाँड़ेपुर, नई बस्ती, वाराणसी–२

: १ :

उस गली का असली नाम है शिवदास महाराज की गली, लेकिन बिगड़ते-बिगड़ते वह 'सैदास' गली रह गया है। इस नाम के पीछे एक पुराना इतिहास है। कई वर्ष पहले, वृन्दावन से शिवदास नाम के एक महात्मा इस शहर में आये और चम्बल नदी के किनारे पर, जहाँ आजकल मुर्दे जला करते हैं, उन्होंने समाधि लगाई। समाधि लेते समय और समाधि से निकलते समय एक भारी भीड़ महात्मा की जय-जयकार करने के लिये वहाँ जमी रहती थी और अपनी इस भक्त प्रजा को देखकर महाराज का उत्साह दुगुना हो जाया करता था; किन्तु एक दिन अनोखी बात हो गई।

महात्माजी ने समाधि ली, जनता की जय-जयकार सुन, उन्हें मिट्टी के कंकड़ फूलों से कोमल लगे, पूरे तीन घंटे के पश्चात् उन्होंने समाधि तोड़ी और जब बाहर निकले, तो जड़ रह गये! उस दिन एक भी भक्त महाराज की जय-जयकार करने के लिये वहाँ नहीं था, इस घटना का इतना भीषण प्रहार हुआ उनके मन पर कि वे उसी समय महाप्रस्थान कर गये। प्रशंसा करनेवाला हो तो उत्साह दुगुना हो जाता है और जिसकी आदत पड़ गई हो प्रशंसा पाने की, उसे प्रशंसा न मिले तो उस धक्के को वह मुश्किल से ही सम्हाल पाता है। महात्मा जी भी इस धक्के को सह नहीं सकते थे। तब भक्तों ने उस स्थान पर एक घाट बना दिया, शिवदास महाराज का घाट और उस गली का नाम रखा शिवदास गली। जो जनता की ज़बान पर घिसते-घिसते अब सैदास गली रह गया है।

ऊँचे, नीचे, सभी जाति श्रौर स्तर के लोग इस गली में रहते थे। हवेलियाँ भी थीं श्रौर कच्चे झोंपड़े भी। कुछ घर पक्के भी थे, पर थे छोटे-छोटे श्रौर ऐसा ही था 'सुरेश निकुंज', जिसके बाहर की श्रोर के दो कमरों में चुन्नीलाल रहता था। वह दफ्तर-हिसाब का चपरासी था, तनखाह कुल पचास रुपये थी। उसी में किसी तरह वह, उसकी पत्नी सीता, पुत्र किशन श्रौर पुत्री चन्दा निर्वाह करते थे।

दो-तीन साल फेल हो कर इसी साल किशन तीसरी श्रेणी में मैट्रिक पास हुश्रा था। बड़े कष्ट झेल कर चुन्नीलाल ने उसे पढ़ाया था। जिस दिन उसके पास होने का समाचार मिला, उसने सवा रुपये के पेड़े मुहल्ले में बाँटे थे। मन-ही-मन न जाने कितने हवाई किले उसने बनाये थे श्रौर नौकरी पर जाते-जाते भी बेटे को उसकी श्राँखें जैसे देखती रहती थीं।

जून का सबेरा पूरा-पूरा उघड़ा भी नहीं था कि उसने बाहर चबूतरे पर सोये किशन को उठा दिया—"उठ किसना!"

किशन ने श्राँखें मलीं, कुड़मुड़ाया, फिर करवट बदल कर सो गया। गर्मी के दिन हैं, रात भर श्रंगारे बरसते हैं, सबेरे की ठंडी-ठंडी हवा में जरा चैन मिला, तो चुन्नीलाल सिर पर श्रा खड़ा हुश्रा—"श्रब तो उठ बेटा, देख तो कित्ता उजास हो गया?"

किशन ने उत्तर ही नहीं दिया।

इस बार चुन्नीलाल ने प्यार से बेटे के मुँह की चादर खींच ली, कहा—"श्रब देर मत कर किसना, उठ बैठ। बड़े सा'ब ने श्राठ बजे बुलाया है, देर होने से सा'ब नाराज हो गये तो फिर नौकरी नहीं मिलेगी।"

किशन झुंझलाया, खुमारी भरे कंठ में नाराजी भर गई, कहा—"तुम्हारे मारे जीना हराम हो गया है, बप्पा! लाख बार कह दिया कि मुझे श्रभी नौकरी नहीं करनी, नहीं करनी, नहीं करनी। मैं

आगे पढ़ूँगा; पर तुम्हारे दिमाग में बात घुसती नहीं शायद ! सवेरे-शाम इस नौकरी के भूत ने मेरा भेजा चाट डाला है। तुम आखिर कभी तो चैन लेने दिया करो।"

बेटा पढ़ा-लिखा, जवान ! और वह ठहरा अनपढ़ चपरासी; पर था तो बाप ही, इस कारण बेटे की बात की चोट पहुँचने पर भी वह उसे सह गया, मिन्नत भरे स्वर में बोला—"पढ़ाने की जुगत होती, तो मैं कभी तुझसे नौकरी करने के लिये नहीं कहता; पर घर की हालत तो तू जाने ही है। साल-दो-साल में चन्दा का भी ब्याह करना पड़ेगा। पचास रुपये में कैसे गुजर हो, तू ही सोच !

किसन नाराज हो कर उठ बैठा, इस सुरमई मीठी-मीठी सुबह में चुन्नीलाल ने उसका मूड एक दम बिगाड़ दिया था, गुर्राकर बोला—"नहीं होती गुजर, तो मैं क्या करूँ ? तुम लोगों के पीछे मैं अपनी जिन्दगी क्यों बर्बाद करूँ ? नहीं था खाने-खिलाने को तुम्हारे पास, तो पैदा क्यों किया था ! नहीं करूँगा मैं नौकरी, तुम मेरा दिमाग मत चाटो !" कह कर वह खाट से नीचे उतरा और सिरहाने रखा तौलिया कन्धे पर डाल कर नदी की ओर चल दिया।

चुन्नीलाल का मन बुझ गया। सीधा-सादा, भोला व्यक्ति था वह, बड़ी आशा से उसने बड़े सा'ब से बेटे के लिये कहा था और वे उसे मैट्रिक के ग्रेड में क्लर्की में लेने को तैयार भी हो गये थे, पर इसने तो सारा ही गुड़ गोबर कर दिया। नौकरी करने के लिये 'हाँ' करना तो दरकिनार, सवेरे ही सवेरे कैसी जली-कटी सुना गया ? चुन्नीलाल की आँखों में आँसू आ गये। कुरते की आस्तीन से आँखें पोंछ कर उसने अपना और किशन का बिस्तर लपेटा और अन्दर आ गया। गर्मी के कारण वह और किशन बाहर चबूतरे पर सोते थे, सीता व चन्दा दुमंजिले की छत पर चली जाती थीं। मकान मालिक शर्मा जी की स्त्री का व्यवहार इन सबके साथ बड़ा अच्छा था, इस

कारण उन्होंने ऊपर की छत इनके प्रयोग के लिये दे रखी थी। सुरेश और किरण, उनके यहाँ भी दो सन्तानें थीं। सुरेश पिछले साल ही इंजीनियर हो कर उड़ीसा की एक पेपर-मिल में लग गया था और किरण व चन्दा एक ही क्लास में होने के कारण एक-दूसरे की पक्की सहेलियाँ थीं।

चुन्नीलाल ने बिस्तर नीचे रखा ही था कि अभी-अभी ऊपर से आँखें मलती आई चन्दा ने प्रफुल्ल कंठ से कहा—"पा लागी बापू!"

पन्द्रह पूरे कर सोलहवें में कदम रखा ही था चन्दा ने। बड़ी भोली, बड़ी सुन्दर! देख कर कोई कह ही नहीं सकता कि वह एक चपरासी की, जात के माली की बेटी होगी। पिछले साल तक फ्राक पहनती थी, अब साड़ी पहनने लगी थी। दुबला-पतला, साँचे में ढला-सा शरीर! सफेद साड़ी, सफेद ब्लाउज पहनती, तो ऐसा लगता, जैसे कमल के गुलाबी फूल पर सफेद रंग की कूँची फेर दी गई हो। इस साल मैट्रिक में आ गई थी। स्कूल खुलने में अभी पन्द्रह-बीस दिन देर थी, अतः घर के काम में सीता का हाथ बँटाया करती थी। माँ-बाप, दोनों की बड़ी लाड़ली बेटी थी चन्दा।

"जीती रह, राजा-सा दूल्हा और महलों-सा सुख मिले!"

बड़ी चिढ़ती चन्दा इस आशीर्वाद देता और जब चन्दा मुँह फुला कर औंधे मुँह बिस्तरे पर जा पड़ती, तो चुन्नीलाल कहता—"अच्छा-अच्छा! नाराज मत हो, बांदरे (बन्दर)-सा दूल्हा और टापड़े (झोंपड़ी)-सा सुख मिले, अब तो हुई खुस?"

आज भी चन्दा को यही आशीर्वाद उसने दिया। चिढ़ कर चन्दा बिस्तर पर लेट गई; पर चुन्नीलाल ने न तो उसे दूसरा आशीर्वाद ही दिया; न वह हँसा ही। चन्दा के लिये यह नई बात थी, चकित हो कर वह उठ बैठी, एक दम बच्ची नहीं थी वह! तरुणाई के उस द्वार पर खड़ी थी, जहाँ पहुँच कर दूसरों के मनोभाव समझने की

बुद्धि आ ही जाती है। बैठे-बैठे उसने ध्यान से चुन्नीलाल का मुँह देखा। उसके मुख की झुर्रियाँ आज और भी गहरी लगीं, बढ़ी हुई दाढ़ी के खूँटे और भी सफेद दिखाई दिये, तो मन में कुछ चिंता-सी हुई, धीरे से पुकारा—"बापू !"

"हाँ, बेटा।"

"आज सवेरे ही इतने उदास से क्यों हो ?"

चुन्नीलाल ने हँसने की कोशिश की—"कहाँ ! उदास तो नहीं हूँ, बेटा !!"

चन्दा उठ कर पास आई, स्नेह भरे स्वर में बोली—"मुझसे झूठ मत बोलो, बापू ! बताओ न, क्या बात है ?" कहते-कहते लाड़ में आकर वह दोनों हाथ चुन्नीलाल के गले में डाल कर झूल गई।

सीता मटके में पानी भर रही थी। चन्दा की हरकत देख कर उसने आँखें निकालीं, कहा—"मरी ताड़-सी तो है और लटक ऐसे रही है, जैसे बच्ची हो दो बरस की, उतर नीचे ?"

चन्दा ने मुँह चिढ़ाया—"नहीं उतरती, जा !"

मन-ही-मन हँस कर सीता ने ऊपर से फटकारा—"उतरती है कि आऊँ लकड़ी ले के।"

चन्दा इतरा कर और भी जोर से चुन्नीलाल के गले से लिपट गई, मुँह बना कर बोली—"देखो बापू, यह माँ रोज मुझे इसी तरह डाँटती रहती है। तुम कह दो इससे कि बाप-बेटी के बीच में नहीं बोला करे, हाँ.......नहीं तो ?"

चन्दा की मीठी-मीठी बातों से चुन्नीलाल की उदासी इस तरह धुल गई, जैसे बरस कर आसमान धुल जाता है, हँस कर बोला—"सुन री, अब जो मेरे और मेरी बेटी के बीच में बोली, तो मूँछ कतर कर रख दूँगा रांड़ का !"

इस पर चन्दा तो मारे हँसी के लोट-पोट हो गई। चुन्नीलाल

और सीता पहले तो दो क्रुद्ध शत्रुओं की तरह एक-दूसरे को घूरते रहे, फिर खिलखिला कर हँस पड़े।

सवेरे-सवेरे किशन की बातों ने जिस मन को झुलसा दिया था, चन्दा और सीता के व्यवहार ने उसी झुलसे मन पर जैसे मरहम का फाहा रख दिया। वह मुस्कराता हुआ बोला—"मैं हाथ-मुँह धोने जाता हूँ। रोटी जरा जल्दी बना कर कपड़े में बाँध दीजो। सा'ब ने आज जल्दी बुलाया है, बँगले पै जाऊँगा, सो रोटी साथ ले जाऊँगा।" फिर उसने धोती और अंगौछा कंधे पर डाला और बाहर निकल गया।

"चन्दा तू जल्दी से सनान (स्नान) करके ठाकुर जी की सेवा कर ले। तेरे बापू को तो अब वखत मिलने से रहा। मैं जित्ते चूल्हा जलाऊँ उत्ते तू स्नान कर ले।"

"और झाड़ू-बुहारी?"

"वह बाद में कर लीजो, रोटी साथ ले जाने की बोले हैं, तेरे बापू! भोग लगे बिना कैसे ले जायेंगे, जल्दी कर।"

"अच्छा!"

चूल्हे में लकड़ियाँ जमा कर सीता ने ऊपर से उपले जमाये। फिर जरा-सा तेल डाल कर माचिस लगा दी। धुएँ का गुबार कोठरी में छा गया। कड़वा-कड़वा धुआँ आँखों में लगा, तो सीता ने आँखें बन्द कर लीं। कुछ ही देर में लौ उठी और धुआँ मिट गया।

चूल्हे पर दाल चढ़ा कर वह आँटा गूँधने लगी।

"थोड़ा घी दे माँ, जोत करनी है।"

खाने के लिये कभी घी घर में नहीं आता; पर हर महीने, तनखाह मिलते ही, पाव भर शुद्ध घी जोत के लिये चुन्नीलाल अवश्य लाता था। यों यह फिजूल-खर्ची ही थी। चन्दा को जरा भी पसन्द नहीं थी; पर इस जरा-सी बात के लिये वह अपने सरल हृदय, भक्त

'बापू' का मन नहीं दुखाना चाहती थी। सर्दी-गर्मी, हारी-बीमारी, कभी उसने यह नहीं देखा कि चुन्नीलाल ने ठाकुर जी की सेवा-पूजा नहीं की हो, हाँ मजबूरी में जब कर नहीं पाता था, तो वैसे ही कुछ देर बैठ ध्यान कर लेता और ऐसे समय चन्दा ही इस कर्त्तव्य को पूरा करती थी। चुन्नीलाल की आस्था को चोट पहुँचाने का उसका मन नहीं होता था। यह तो किशन ही था, जो जब-तब इस सेवा-पूजा के लिये चुन्नीलाल को ताने मारता था। चन्दा से ही वह ढंग से बातें करता था। सीता और चुन्नीलाल से तो वह इस तरह व्यवहार करता था, मानों वह राजा हो और वे उसके चाकर!

गरीब और धर्मभीरु बाप का रईस और नास्तिक बेटा था किशन।

डिब्बे में से चुटकी भर घी निकाल कर सीता ने जोत में डाल दिया। चन्दा दीपक ले कर चली गई। यथाविधि पूजा समाप्त किये देख उसके मुँह पर चमक आ गई, बोला—"मेरी रानी बेटी है तू, बाप के मन की बात समझ लेती है, भगवान् तेरे को राजाओं-सा सुख देगा बेटा!" फिर उसने ठाकुरजी के सामने शीश नवाया और मन-ही-मन कुछ श्लोक पढ़ कर, कटोरी में से चरणामृत लेकर मुँह में डाल लिया।

चन्दा मुस्करा दी।

—:०:—

: २ :

किशन सीधा घाट की ओर गया। तैरने का उसे बचपन से चाव था। था भी वह शहर का माना हुआ तैराक! उसका नियम था, सौ डंड-बैठक (एक प्रकार की कसरत) लगा वह धम से पानी

में कूद पड़ता और जब तक थक कर चूर न हो जाता, पानी से बाहर न आता। नियमित व्यायाम ने उसके शरीर पर असर दिखाया था। किशन अच्छा ऊँचा, पूरा तगड़ा जवान था। स्वास्थ्य की लाली उसके चेहरे से फटी पड़ती थी। सम्भवतः अपनी इसी विशेषता के कारण वह अपनी टोली का 'दादा' बन गया था; जिसका आये दिन का काम था किसी का सिर फोड़ना, दो की लड़ाई में कूद पड़ना और शहर में दादागीरी करते फिरना!

उसके मुँह पर तो कौन कहता; पर पीछे-पीछे लोग उसे 'गुण्डा' और उसकी 'टोली' को 'शहर के छटे हुए बदमाशों का दल' कहा करते थे। मौका पड़ने पर किशन जान पर खेल कर मरते मनुष्य को उबार लाता था; इसी कारण शहर के 'ऊँचे' लोगों की दृष्टि में वह 'गुण्डा' था। डर का नाम नहीं था उसमें, यों तो दुनिया की हर लड़की को वह अपनी बहन और औरत को 'माँ' मानता था और इसी कारण 'गुण्डा' हो कर भी वह 'गुण्डा' नहीं था। हाँ, यदि किसी के लिये उसके मन में सहानुभूति नहीं थी, तो वह अपने गरीब माँ-बाप के प्रति। बात-बात पर वह उन्हें इस बुरी तरह झिड़कता था कि उनकी आँखें छलछला आतीं; पर वे उसका कर भी क्या सकते थे! अपमानित, लांछित मुँह झुका कर रह जाते थे।

और दिनों की अपेक्षा किशन आज जरा जल्दी चला आया था नदी पर। सूरज का गोला पूर्व में अभी ठीक से उभरा तक नहीं था। हाँ, अपना लाल परिधान उसने आसमान की छाती पर अवश्य फैला दिया था। किशन के साथियों में से कोई भी अभी नहीं आया था। वह घाट की सीढ़ियाँ उतर कर पानी में पैर लटका कर चुपचाप बैठ गया।

चम्बल नदी का पाट इस स्थान पर काफी विस्तृत हो गया

था। नदी गहरी तो थी ही, साथ ही मगर भी अक्सर दिखाई पड़ जाते थे। अक्सर ही कोई-न-कोई उन का भोजन बनता रहता था; इस कारण प्रायः ही, किनारे को छोड़कर, नहानेवाले बीच नदी में जाने का साहस नहीं करते थे। इसी डर के कारण चुन्नीलाल बहुधा किशन को तैरने से रोकता था; पर किशन "हाँ, हाँ, तुम चुप रहो!" कह कर उसके भयभीत वात्सल्य को जैसे ठोकर से उछाल देता।

ऊपर से किसी ने नदी के शान्त जल में एक पत्थर दे मारा! नदी की छाती में इस आघात से असंख्य तरंगें उठीं और दूर किनारे तक फैलती चली गयीं।

"किशन!"

किशन ने मुड़ कर देखा।

नदी के वक्ष को आन्दोलित करनेवाला बचपन का साथी महमूद था, जो ऊपर खड़ा मुस्करा रहा था।

महमूद मुसलमान था, पर जहाँ मित्रता थी वहाँ धार्मिक भेद-भाव कैसा! भेदभाव की दीवारें बड़े लोगों के बीच हैं, वहाँ सारे सम्बन्ध पैसे की दृष्टि से परखे जाते हैं। दो जून मेहनत करके पेट भरनेवाले भेद-भाव को क्या जानें? किशन का 'बापू' यदि चपरासी था, तो महमूद का अब्बा पानवाला था; और महमूद दफ्तर से छूटता, तो 'अब्बा' को घर भेज स्वयं पान बेचने बैठ जाता। किशन की तरह अपने अब्बा से उसे नफरत नहीं; बल्कि प्यार था, तभी तो उनके एक बार कहते ही वह 'फारेस्ट'-विभाग में क्लर्क का काम करने को तैयार हो गया था।

महमूद को देख कर किशन के चेहरे पर मुस्कराहट खिल गई। पास पड़ा एक कंकड़ उठा कर उसने महमूद की तरफ उछाला, महमूद ने कंकड़ दबोच लिया। कंधे पर रखा तौलिया, पत्थर पर रख

वह किशन के पास आ कर बैठ गया, बोला—"आज तो बड़ी जल्दी आ गया तू !"

किशन की धुल गई नाराजी इस बात से फिर मैली हो गई, मुँह सिकोड़ कर बोला—"इस बापू के मारे नाक में दम है, यार ! जबसे रिज़ल्ट आया है 'नौकरी कर ले' कह-कह कर मेरी जान खा डाली और कल अपने साहब से बातें भी कर आये। सबेरे-सबेरे उठा यार। गुस्सा तो इतना आया कि क्या बताऊँ, पर पी कर रह गया। साफ कह दिया, मुझे नहीं करनी है नौकरी, बैठे बिठाये 'मूड' बिगड़ गया ! बस उठ कर इधर ही चला आया।"

महमूद और किशन की आपस में कोई शारीरिक समानता नहीं थी। किशन लम्बा-चौड़ा उद्दंड प्रकृति का युवक था; जबकि महमूद दुबला-पतला निहायत ही सीधे-सादे स्वभाव का था और इसी कारण मन-ही-मन वह जहाँ किशन को प्यार करता था, वह उससे डरता भी था। किशन माँ-बाप से जिस तरह का व्यवहार करता था, वह उसे जरा भी पसन्द नहीं था। आखिर तो वे उसके जन्मदाता थे और उसकी दृष्टि में जन्मदाता फरिश्तोंसे भी ऊँचा था; लेकिन वह कभी जोर दे कर किशन से मन की बात नहीं कह पाया; किशन की बात सुन बगलें झाँकता हुआ बोला—"ठीक ही तो है; नौकरी तो करनी ही है एक दिन। फिर अभी से उसमें फँसने की क्या जरूरत है ?"

अपने पक्ष में महमूद को बोलते देखा, तो किशन प्रसन्न हो गया। दो-तीन कंकड़ एक साथ उसने पानी में फेंक दिये। लहरें तेजी से काँपीं और कुछ ही पलों में उसके कदमों में आ कर बिखर गयीं। आत्मसन्तोष से किशन का मुख चमकने लगा, बोला—"पर यार तू तो निरा मिट्टी का लोंदा है। अब्बा ने कहा पढ़ाई छोड़, नौकरी कर और तू खुदा का बन्दा—आँख-कान बन्द कर चल दिया

क्लर्क करन ! साली यह क्लर्की, मनुष्य से चिपके तो फिर छूटे नही। बन्दा तो कभी क्लर्की नहीं करेगा। बनेगा तो अफ़सर, वरना यों ही मौज उड़ायेगा।"

'बनेगा बेटा अफसर !' मन में कहा महमूद ने और फिर दूर, दूसरे किनारे की घनी झाड़ियों को देखने लगा।

सूरज का गोला लाल परिधान की ओट से झाँका कि मनोहर, असलम और गोपाल भी आ गये। ये पाँचों पक्के मित्र थे, एक-दूसरे के लिये खून बहाने को तैयार, अपने दल को ये कहते 'पंचशील' और शहर के लोग कहते 'बदमाश' ! पर वास्तव में ये बदमाश थे या शरीफ, यह जरा विवादास्पद बात थी ! दुख-दर्द में, मुसीबत में जान पर खेल कर किसी का त्राण करना ही यदि 'बदमाशी' थी, तो ये जरूर 'बदमाश' थे।

तीनों लंगोट कसे थे। वे ऊपर से ही 'धम्' से कूदे। कूदते ही छींटे उछले और महमूद व किशन पानी में सराबोर हो गये। फिर क्या था ! महमूद मछली की तरह पानी में फिसला और किशन कहाँ चुपके से नदी के गर्भ में सरक गया किसी को पता ही नहीं चला।

तैरता हुआ मनोहर काफी दूर निकल गया। सूर्य की किरणें उसके गोरे भरे हुए शरीर को चूम-चूम कर नाच रही थीं, कि अचानक ही किसी ने पानी में उस का पैर पकड़ लिया और पूरे जोर से उसे नीचे की तरफ खींचा। मनोहर के तो होश गुम ! डरावनी आवाज में चिल्लाया—"हाय रे, पकड़ लिया, पकड़ लिया !"

महमूद, असलम और गोपाल बेतहाशा उसकी ओर भागते हुए चिल्लाये—"कौन है, कौन है, किसने पकड़ा है ?"

"मगर है शायद, बचाओ, म....रा....रे !" और इससे पहले कि ये तीनों उस तक पहुँच पाते, मनोहर का पूरा शरीर पानी में

चला गया। तीनों ने गोते लगा-लगा कर नदी की छाती चीड़ डाली; पर मनोहर तो जैसे नदी के तल में जा बैठा था ! थक कर चूर हो जाने पर वे पानी से बाहर निकले और मुँह लटकाये ऊपर आ कर बैठ गये।

तभी महमूद को किशन का ध्यान आया—"किशन कहाँ गया ?"

"नदी में उतरा तो था वह।"

"हाय रे, तब तो वह भी गया !" और महमूद की आँखों से टप्-टप् करके आँसू गिरने लगे। गोपाल और असलम भी दीन-असहाय नेत्रों से नदी की ओर ताक रहे थे, जिसने आज बात-की-बात में उनके दो मित्रों को निगल लिया था। अब कैसे वे यहाँ से जायें और कैसे उनके घरों में यह दुःखद समाचार पहुँचायें ?

"वाह री औरतों !" किशन ने ठहाका लगाया।

सुन कर तीनों ऐसे उछले, जैसे किसी साँप पर पैर पड़ गया हो ! किशन के गले में हाथ डाले मनोहर हँस रहा था और ये तीनों आँखें फाड़-फाड़ कर इस तरह उन्हें देख रहे थे, जैसे मनुष्य न हो कर वे कोई अजूबा हों !

किशन ने मनोहर के गले से लिपट कर रोना आरम्भ किया—"हाय रे मेरे किसना, तू तो बड़ा अच्छा था ! हाय रे मेरे मनोहर, तू जैसे चाँद का टुकड़ा था ! अरे कहाँ चले गये तुम दोनों, अरे उस मगर का सत्यानाश हो, हाय रे मेरे किस........!!" लेकिन नाम पूरा नहीं हुआ था कि महमूद ने उछल कर किशन की गर्दन जा दबाई। फिर तो तीनों ने मिल कर उसकी वो पिटाई की कि गरीब हाथ जोड़ने लगा—"माफ करो यारो, तुम्हारी हालत देख कर हँसी आ रही है, मुझे। डुबकी मारते तो तुम लोगों ने देखा नहीं था, सो

बस नीचे जा कर मनोहर की टांग खींच ली, और यह तो ऐसा घबराया कि कपड़े की तरह खिचता चला गया।"

फिर तो वो कहकहे लगे वहाँ नदी पर कि आने-जानेवाले तक चौंक कर इन लोगों की ओर देखने लगे।

—:०:—

: ३ :

नदी से किशन लौटा, तो कोई बारह बजा था। सीता से तो वह खैर बोला ही नहीं, बल्कि देख कर उसके माथे पर बल ही पड़ गये, चन्दा को आज्ञा दी—"रोटी रख दे!"

चन्दा को जरा परिहास सूझा—"हवाई घोड़े पर सवार हो कर आया है क्या दादा?"

किशन गुर्राया, तो चन्दा खिलखिला पड़ी—"अरे जा, बड़ा आया आँखें दिखानेवाला, मैं कोई नन्हीं-सी बच्ची हूँ जो डर जाऊँगी तेरी आँखें देख कर।"

इस वार किशन के चेहरे पर भी मुस्कराहट आ गई, बोला—"बच्ची नहीं भई, तू बुढ़िया दादी है मेरी! पोपले मुँह और पके बालोंवाली। सो हे दादी साहिवा, अपने पोते के लिये भोजन ले आइए।"

चन्दा हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई, सीता का भी मन हुआ बेटे-बेटी के इस खेल में भाग ले; पर वह किसना, बाप रे! बोलते ही खाने को दौड़ेगा, कमरे की देहली पर बैठी वह टुकुर-टुकुर ताकती भर रही।

बड़ा भोला मुख बना कर किशन ने कहा—"भूख लदी है दादी जी !" और चन्दा हँसी से दुहरी होती हुई रोटी लेने चली गई।

किशन ने परम तृप्ति से खाना खा कर जोर की डकार ली। सामने बैठी चन्दा से कहा—"थोड़ा पानी तो और दे चन्दा ! क्या बला की गर्मी पड़ती है यहाँ भी, एक कौर खाओ और एक गिलास पानी पिओ।"

चन्दा ने लोटे से उसकी गिलास में पानी भर दिया।

खा-पी कर किशन उठ खड़ा हुआ, तो चन्दा बोली—"फिर चले ?"

"यहाँ दिन भर क्या करूँगा, अच्छा शाम को मेरे लिये खाना मत बनाना, मैं शायद रात को देर से आऊँगा।" कह कर वह तीर की तरह बाहर चला गया।

जूठी थाली रसोई में रख कर चन्दा कमरे में आयी और सबेरे किरण से ली सरिता पढ़ने बैठ गई। सारा दिन पड़ी-पड़ी वह पत्रिका पढ़ती रही, जब कमरे में अन्धकार छाने लगा, तो वह उठी—"माँ !"

सीता रसोई की तैयारी कर रही थी, वहीं से बोली—"क्या है बेटा !"

"मैं ऊपर जा रही हूँ, किरण को किताब वापस दे आऊँ।"

"जा, पर जल्दी अइयो।"

"बस अभी आई।"

चन्दा और किरण का यों कहीं भी साम्य नहीं था; फिर भी वे दोनों एक-दूसरे की पक्की सहेलो थीं। किरण ब्राह्मण थी, चन्दा माली। पढ़ाई में चन्दा सदा क्लास में प्रथम आती; जबकि किरण मास्टर से पढ़ने पर भी सदा घिसटती हुई पास होती। चन्दा थी गोरी, छरहरी; और किरण साधारण नाकनक्शे वाली और साँवली,

फिर भी दोनों एक-दूसरे के ऊपर जान छिड़कती थीं; और किरण ही नहीं, चन्दा के स्वभाव और सौन्दर्य से उस की माँ तथा शर्माजी तक प्रभावित थे। इसी कारण चन्दा बेरोक-टोक, सिवा उनके चूल्हे-चौके के, उनके सारे घर में घूमती रहती थी।

"किरण !"

कमरे में प्रविष्ट होने से पहले चन्दा ने किरण को पुकारा तो अवश्य; किन्तु उत्तर की राह नहीं देखी, और हाथ की पत्रिका से मुख पर हवा करती हुई अन्दर घुस गयी।

"अरे !" चन्दा दरवाजे पर ही ठिठक गई।

बँधे हुए होल्डाल पर सुरेश बैठा था, सफर की थकावट के चिह्न उसके मुख पर थे। कदाचित अभी-अभी वह चला आ रहा था। किरण ने सुरेश के आने का जिक्र किया ही नहीं था चन्दा से; वरना पेटीकोट-ब्लाउज पर जरा-सा दुपट्टा ओढ़े, गँवारों की तरह वह कभी ऊपर न आती। देखते ही चन्दा का मुँह लाल हो गया, किसी तरह कहा—"नमस्ते, किरण कहाँ है ?"

"बन्दी हाजिर है," हाथ में चाय की ट्रे लिये किरण अन्दर आती हुई बोली।

चन्दा को जैसे मुक्ति का मार्ग दिखाई दे गया, पत्रिका कुर्सी पर रख कर वह जाने के लिये मुड़ी ही थी कि सुरेश ने रोक दिया—"कहाँ चली ?"

साल भर बाद आया था सुरेश। यों तो पढ़ने के लिये पिछले पाँच साल से वह बाहर-ही-बाहर रहा था; लेकिन जब कॉलेज में छुट्टी होती, वह घर भाग आता था। इस कारण चन्दा ने पहले कभी उसके प्रति संकोच नहीं किया। साल भर पहले जब सुरेश नौकरी करने गया, वह फ्राक पहनती थी। इस बार आया तो साड़ी पहनने लगी थी। सुरेश की बात के उत्तर में लज्जा से लाल हो कर

वह अपनी अधखुली देह को ढांकने का प्रयत्न करती हुई धीरे से बोली—"माँ बुला रही होगी नीचे।"

इस बार सुरेश उठ कर उसका हाथ पकड़ कर घसीट लाया, बोला—"अरे चल माँ की बेटी, साड़ी पहनने लगी तो समझती है सब इसका रोब ही खा जायेंगे, बैठ यहाँ !"

चन्दा के शरीर में जैसे काँटे उठ आये, सुरेश के कंधे पर चढ़ी-चढ़ी बहुत घूमी है वह, तब तो कभी ऐसा नहीं लगा था, फिर आज के इस स्पर्श में कौन-सा जादू आ समाया था, जो उसे चुपके ऊपर से नीचे तक सम्मोहित कर गया ? वह लजा कर मुस्करा पड़ी।

किरण एक और प्याला लेने अन्दर चली गई, वापस आई तब तक चन्दा कमरे में बिछे फर्श पर सिकुड़-सिकुड़ा कर बैठ गई थी। सुरेश उसी तरह होल्डाल पर बैठा हुआ था और मुस्कराते नेत्रों से चन्दा का पलट-पलट पर रंग बदलता मुख देख रहा था, किरण को देखते ही बोला—"जरा इस चन्दिया का चेहरा तो देख किरण ! कैसी गिरगिट की तरह रंग बदल रही है बार-बार।"

किरण हँस पड़ी, बोली—"कुछ दिन हुए एक कहानी पढ़ी थी सुरेश दादा ! ....उसमें थी एक दुल्हन, जो दूल्हे की कल्पना कर इसी तरह लाल हो जाती थी। क्यों चन्दा याद है न वह कहानी 'मन के मीत' ?"

चन्दा ऐसी झेंपी कि उठ कर भाग खड़ी हुई, किरण चिल्लाती ही रह गई—"अरे चाय तो पीती जा चन्दा !"

सुरेश ने जोरदार कहकहा लगाया—"भई, वाह, यह भी खूब रही !" फिर किरण का कान पकड़ा—"नानसेन्स, ईडियट, ऐसा भी मज़ाक किया जाता है किसी से ! कोई सुने, तो क्या कहे अपने मन में ?"

किरण दर्द से दोहरी होती हुई बोली—"कहेगा क्या, बधाई

ही देगा तुम्हें ऐसी सुन्दर पत्नी पाने पर, हाय रे! छोड़ो न मेरा कान।"

"चुप रह कमबख्त, माँ या बाबूजी सुनेंगे तो खाल खींच लेंगे।"

"तुम कान छोड़ो, मैं नहीं कहूँगी।"

सुरेश ने कान छोड़ दिया, किरण मुस्कराती हुई चाय बनाने लगी। एक प्याला सुरेश को देकर एक खुद ले लिया; सुरेश चुपचाप चाय पीने लगा, फिर कुछ देर बाद पूछा—"उस किशन के कैसे हाल हैं आजकल?"

"वैसे ही जैसे पहले थे, नवीनता यह है कि इस साल पास हो गया है मैट्रिक में, एक कप और दूँ?" और कप में चाय ढालते हुए किरण बोली—"चन्दा कैसी लगी दादा?"

"क्या मतलब?"

"मतलब कि पहले से भी सुन्दर लगने लगी है, तुम्हें नहीं लगी?"

सुरेश जरा-जरा पकड़ में आने लगा, तो बात उड़ाता हुआ बोला—"लगी भी हो तो तुमसे मतलब? ला दे कप।"

किरण ने कप सुरेश के हाथ में दे दिया, साँस भर कर बोली—"हाँ, मतलब रखकर भी क्या होगा, जात-बिरादरी की होती तो बात भी थी। मरी पैदा भी हुई तो एक माली के घर में, वाह री किस्मत!"

सुरेश ने कोई जवाब नहीं दिया, चाय पीकर वह नहाने चल दिया।

× × × ×

इधर चुन्नीलाल बड़े सा'ब के बँगले पर उनकी लड़की की शादी के इंतजाम में उलझा तो दिन भर उसे पैर फैलाने की भी फुरसत नहीं मिली। उसपर किसी ने यह भी नहीं कहा कि एक

गिलास शरबत तो पी ले, नौकरों ने खाया पिया या नहीं इसकी चिन्ता बड़े आदमी भला कब करते हैं ? समझदार नौकर होता वह तो अपनी चिन्ता आप कर लेता, छिप कर अधिक नहीं तो दो-तीन गिलास शरबत तो उड़ा ही देता; पर यह उसकी बदकिस्मती थी कि छिपाकर कोई काम करना उसे आता ही नहीं था। पूरे दिन बैल की तरह इधर से उधर भागता रहा। प्यास से उसका कंठ बार-बार सूखा जा रहा था। एक तो शिद्दत की गर्मी उसपर नल का जलता हुआ पानी। गले-गले तक पानी पीकर भी उसकी प्यास नहीं बुझी।

आखिरकार उसे छुट्टी मिली। बँगले से बाहर निकला तो एक-एक पैर मन-मन भर का हो रहा था। उसके घर से चार मील था बड़े सा'ब का बँगला। चलते-चलते उसके पैर फटे जा रहे थे। 'एक सवारी चार आने' चिल्लाते, कई ताँगेवाले उसकी आँखों के सामने से निकल गये, पर आज उसकी जेब में अधेला भी नहीं था। हसरतभरी दृष्टि से वह ताँगों की ओर देखता फिर चलने लगता। इतना थक गया था कि जी कर रहा था रास्ते में ही कहीं पड़ रहे, पर यह तो नितान्त असंभव-सी बात थी। थकान हो तो भी अपने घर तक तो उसे पहुँचना ही था, थके पैरों को घसीटता-सा वह चलता रहा।

नौकरी करते सारी जवानी बीत गई, उसके सिर के काले बाल सफेद होकर झड़ तक गये पर साइकिल खरीदने की तमन्ना उसकी छाती में ही रह गई। तनख्वाह का एक भी पैसा कभी उसने पास नहीं रखा, कभी पान नहीं खाया, बीड़ी जरूर पी और एक चीज कभी-कभी और की उसने, अपने बचपन के मित्र गणेशीलाल ड्राइवर से एक-दो रुपये की उसने हारजीत अवश्य की, इसके सिवा और कोई भी बुराई उसने नहीं पाली थी। उसपर भी साइकिल खरीदने का पैसा वह आज तक नहीं जोड़ पाया।

मनुष्य की अपनी आकांक्षा जब उससे पूरी नहीं हो पाती, तो वह उसी आकांक्षा को अपनी सन्तान द्वारा पूरी होते देखने की आशा मन में सँजोने लगता है, चुन्नीलाल के पास साइकिल नहीं थी। अपना नाम वह लिख नहीं सकता था। सोचता था पढ़-लिखकर किशन नौकरी करेगा तो सबसे पहले एक साइकिल वह अवश्य खरीदेगा। पर वह आशा निराशा की शिला के नीचे पीस दी गयी। 'किशना' ने, कैसा तड़ाक से कह दिया, 'नौकरी नहीं करूँगा, बी० ए० करूँगा,' काश पैसा होता उसके पास तो वह जरूर किशन को बी० ए० कराता। एक चपरासी का बेटा अफसर की कुर्सी पर जब बैठता तो शहर वाले आँखें फाड़-फाड़ कर देखते ही रह जाते।

"अरे चुन्नी।"

लाडपुरा दरवाजे तक पहुँचा ही था चुन्नीलाल कि 'नवयुग टी स्टाल' पर खड़े गणेशी ने उसे पुकारा।

विचार में डूबे मनुष्य को थकान का अनुभव उस समय होता है जब कोई उसे विचारों की दुनियाँ से खींचकर यथार्थ के संसार में ले आता है। गणेशी की पुकार से चुन्नीलाल को भी लगा कि वह अब एक कदम भी नहीं चल सकेगा मानो किसी ने दोनों पैरों पर दो सिलें रख दी थीं। मुँह उठाकर देखा, गणेशी पास जाकर उसका हाथ पकड़ कर होटल में ले गया और छोकरे से बोला—"ऐ, एक डबल दे जल्दी से।"

चुन्नीलाल ने मना करना चाहा—"रहने दे यार।"

गणेशी ने उसका हाथ मसक कर कहा—"अब पी भी ले यार, जरा जल्दी दे रे भैया।"

दूसरे ही मिनट उबल-उबल कर लाल सुर्ख हुई चाय से भरा बड़ा कप लाकर छोकरे ने चुन्नीलाल के सामने रख दिया। चुन्नीलाल जरा झेंप गया, वह न खुद कभी किसी होटल में जाता था न किसी को कभी ले ही गया था। इसी कारण मित्र होने पर

भी गणेशी की इस आवभगत ने उसे शर्मिन्दा-सा कर दिया। जो किसी को कभी कुछ दे नहीं सकता उसे किसी से कुछ लेने का अधिकार भी तो नहीं होता। मन-ही-मन अपनी विवशता पर झेंपते हुए चुन्नीलाल ने प्याला उठाकर मुँह से लगा लिया और धीरे-धीरे पीने लगा।

पीते ही उसके थके शरीर की थकान धीरे-धीरे धुलने लगी, चाय समाप्त कर उसने प्याला रख दिया और गणेशी की तरफ देखा।

गणेशी होटल के बाहर निकलता हुआ बोला—"घर जा रहा है तो बस मैं भी चलता हूँ, जरा काम है गोरधन से," फिर कुछ रुक कर कहा—"बाजार में आना तूने एकदम ही छोड़ दिया रे?"

'बाजार' से गणेशी का मतलब, 'सट्टा बाजार' से था, चुन्नीलाल समझ गया, उतरे चेहरे से बोला—"ओफ क्या करूँ यार! गाँठ में अधेला नहीं और पंडितजी पूजा करने चले। जब तलक लगाने को पैसा न हो तो बाजार में जाने से फैदा?"

एक बड़े सेठ का ड्राइवर था गणेशीलाल, तनखा तो अच्छी थी ही, बख्शीश भी कम नहीं पड़ती थी। तनखा की एक-एक पाई पत्नी वसूल लेती पर बख्शीश तो इसी की जेब में रहती और वह सारी बाजार में उड़ जाती। हमेशा हारता नहीं था जीतता भी था और फिर जीती रकम पूरी-की-पूरी दाँव पर लगा देता और अक्सर हाथ मलता ही रह जाता।

जुआ एक ऐसा सुनहरा धोखा है जो मनुष्य को यदि पकड़े तो डुबाकर ही छोड़ता है। एक के सौ की आशा में कभी-कभी शून्य मनुष्य के पल्ले पड़ता है तो कल जीतने की आशा में वह बराबर खेलता चला जाता है और जब पानी सर से गुजर चुका होता है तब वह उस सुनहरे धोखे से बाहर निकलने के लिए तड़फड़ाता है।

गणेशी का हाल इतना गिरा नहीं था, पत्नी के दबंगपन के मारे तनखा का एक भी पैसा उसे ग्राज तक अपने पास रखने की हिम्मत नहीं हुई थी, वरना जिस उम्मीद को गले लगाकर वह दाँव लगाता था उसमें घर के बर्तन बिकते देर नहीं लगती।

"यार एक बात कहूँ", चलते-चलते बहुत देर बाद गणेशी बोला—"कल रात मेरे को सुपना आया था कि आज चाँदी का भाव दो रुपये तोला रहेगा, तेरी कसम चुन्नी, मेरे पास के पाँचों रुपये मैंने दो के भाव पर लगा दिए आज का दाँव तू मत छोड़।

चुन्नीलाल जरा सोच में पड़ा, बोला--"पर मेरे पास रुपये कहाँ हैं ?"

गणेशी ने चुन्नीलाल का हाथ मसक कर कहा—"रामजी भाई पाँच रुपया सैकड़े पर रुपया देता है।"

"उधार ?"

"इत्ता घबराता क्यों है यार, पाँच के पच्चीस न बने आज तो कहना, बोल, खेलेगा ?"

मोटे पेट और छोटे दिलवाला रामजी भाई किराने का व्यापारी और पक्का सूदखोर था। कहने वाले तो यही कहते थे कि रामजी भाई के मोटे पेट में माँस मज्जा की जगह बटोरे हुए सूद की गड्डियाँ भरी हैं। 'बजार' का शायद ही कोई आदमी रामजी भाई से प्रसन्न हो पर चूँकि आड़े समय वही काम आता था, इस कारण जरूरतमन्द इस मोटे व्याज पर भी इसीसे रुपये उधार लिया करते थे; और जिन्दगी भर के लिए उसके कर्जदार बन जाते थे: रामजी भाई ने जिसे कर्ज दिया वह कभी उससे उऋण नहीं हुआ, मूल से जब व्याज बढ़ जावे तो उऋण होने का सवाल ही कहाँ पैदा होता है ?

"रामजी भाई," चुन्नी ने दोहराया, फिर इन्कारी में सिर हिला दिया।

गणेशी ने फिर कहा—"रामजी भाई औरों के लिए चाहे जैसा भी हो पर, अपना वह पक्का यार है। देख लेना कभी जो वह तुझसे तकाजा करे। अपन ऐसा यार बनाते ही नहीं जो यारी न निभाये। बोल क्या खियाल है?"

चुन्नीलाल का मन बड़ा कच्चा था, डगमगा गया, पाँच की जगह पच्चीस बन भी सकते हैं फिर गणेशो का सपना। सच में आज उसकी किस्मत ही तो नहीं खुलने वाली है? इतने आश्वासन पर भी दाँव नहीं लगाया और कहीं यही भाव खुल गया तो! और इस तो ने गजब कर दिया—"पर यार तेरी भाभी के कान में बात मत पूरजो वरना तू अपने घर को जाने हो है।"

गणेशी चट से बोला—"सो सब समझता हूँ यार।"

रात के आठ बज चुके थे, रामजी भाई चूँकि जैन था इस कारण शाम के छह बजे ही दूकान बन्द कर घर चला जाता था, फिर खा-पीकर आठ बजे तक वापस आ दूकान का एक किवाड़ खोल बैठ जाता। उसके मुख्य व्यापार का समय नौ से रात के बारह तक ही तो रहता था। गद्दी पर अधलेटा पड़ा वह हुक्का पी रहा था।

"जैरामजी की भाईजी।"

रामजी भाई ने एक नजर चुन्नीलाल को परखा फिर गणेशी से बोला—"जै महावीर, के हाल चाल है।"

"तुम्हारी किरपा से सब आनन्द-मंगल है। भाईजी, ये अपना यार चुन्नीलाल है।"

रामजी भाई आँख की कोर से चुन्नीलाल को देखता हुआ बोला—"जानूँ, दफ्तर हिसाब में काम करे है यो! क्यों रे?"

चुन्नीलाल ने हाथ जोड़ दिये—"हाँ भाईजी।"

फिर जैसे बात-की-बात में रामजी भाई बोला—"तेरी चन्दा

मेरी छोरी के साथ ही पढ़े है। सौदा-सुलुफ लेने भी मेरी ही दुकान पर आवे है। अबके बहुत दिन से दिखाई नहीं पड़ी, ठीक तो है न ?"

रामजी भाई की इस सहृदयता का चुन्नीलाल के मन पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। कहाँ रामजी भाई 'राजा भोज' और कहाँ वह 'गंगू तेली।' तरल कंठ से बोला—"ठीक है भाईजी, बाजार का सारा धन्धा वही करे है। मेरे को तो टेम मिलता ही नहीं और अपना किसना तो तुम जानो, राजा है, टके अधेले की चीज खरीदते सरमा मरे।"

इस बार रामजी भाई की आँख जरा दब गई, रहस्य भरे स्वर में बोला—"बड़ी सुन्दर है तेरी चन्दा चुन्नीलाल।"

चुन्नीलाल ऊपर से लेकर नीचे तक कृतज्ञता में नहा गया—"सब आपकी कृपा और ठाकुरजी का परताप है भाईजी।"

गणेशी इस बार मुख्य बात पर आया—"आज चाँदी दो के भाव खुलेगी भाईजी सरियत से कहता हूँ।" मैंने तो लगा दी, पर यह चुन्नी......." गणेशी ने रामजी भाई की ओर साभिप्राय देखते हुए चुन्नीलाल की ओर इशारा किया।

चुन्नीलाल ने एक बार और बचने की कोशिश की—"पर भाईजी यह कोई जरूरी थोड़े ही है कि जीत हो ही सही, हार गया तो ......।"

रामजीभाई ने बीच ही में बात काट दी—"हार-जीत तो आदमी की जिन्दगी में चलती ही रहती है, आज यदि हारा तो कल जीतेगा। सट्टे का यह नियम है, रोज-रोज हारने से कोई भला सह सके है के ! बोल कहे तो दूँ दस का नोट ?"

चुन्नीलाल के ललाट पर उत्तेजना के मारे पसीने की बूँदें चुहचुहा आयीं, इतनी बड़ी रकम और वह भी उधार लेकर वह

आज पहली बार दाँव पर लगाने जा रहा था, सीता से छिपाकर यद्यपि पहले भी उसने जुआ खेला था पर तब गणेशी ने मदद की और आज था यह रामजी भाई।

× × × ×

: ४ :

"चन्दा !"

पुकार सुनकर चन्दा ने मुँह उठाया, ऊपर से झरोखे में खड़ी किरण बुला रही थी—"किसका ध्यान कर रही है? ऊपर आ न।"

चन्दा मुस्करा दी—"तूने आज तक किस-किस का ध्यान किया है?"

किरण लाल हो गई, बोली—"अरी मुझे समझा क्या है तूने? जरा बात कही कि पत्थर मार देती है, अब आ तू ऊपर ताश खेलेंगे।"

"दो जनों में ताश का क्या मजा।"

इस पर किरण आँखें नचाकर बोली—"दो ही क्यों? दादा जो हैं, अब तो आयेगी?"

चन्दा ने इसपर मुँह फिरा लिया, कहा—"अभी नहीं आ सकूँगी किरण। बापू जी नहीं आये अभी तक। उस पर खाना भी नहीं खाया है।" फिर कुछ रुक कर धीरे से कहा—"नाराज नहीं होना।"

किरण से ऐसे स्वर में चन्दा ने पहली बार बात की थी क्योंकि यह तो किरण की समझ में आया नहीं; हाँ, स्वर की

भिन्नता अवश्य उसने पकड़ ली, बोली—"अरे वाह, बड़ी सीधी हो गई है आज तो, अरे वो देख, तेरे बापू आ रहे हैं, खाना खाकर आना।"

चुन्नीलाल को देखकर उसके मुख पर चमक आ गई--"आज तो बड़ी देर कर दी बापू ?"

थके और तूफान से फँसे व्यक्ति की तरह घरघरा कर चुन्नीलाल ने कहा--"साब की बेटी का ब्याह है न बेटा, सो काम बहुत करना पड़ा। अब कहीं जाके छुट्टी मिली है, बदन का एक-एक जोड़ ढीला हो गया, आज तो इत्ती दूर से पैंदल आना बड़ा अखरा बेटा।"

बात सीता के कान में गई और सुनकर दर्द से उसका मन कचोट उठा। माँ-बाप के घर से जितना जेवर मिला था, दो-एक को छोड़ कर सभी बिक गये थे, फिर भी आज तक चुपड़ी रोटी नहीं मिली थी खाने को। उस पर कितनी जी तोड़ मेहनत करनी पड़ती थी चुन्नीलाल को। चालीस की उमर में ही साठ साल जैसा दिखने लगा था वह; पर वह कुछ कर भी तो नहीं सकती। कितनी बार उसने उससे कहा होगा कि मुझे भी नौकरी कर लेने दो। पाँच-पचीस जो भी मिलेंगे ठीक है; पर चुन्नीलाल ने हमेशा इन्कार कर दिया, कहता--"जात का माली हूँ तो के हुआ री, इत्ता गया गुजरा समझे है के मुझे जो तेरे से दूसरों की जूठन धुलवाऊँगा। आगे से काम करने का नाम भी मत लीजो, हाँ।"

और ऐसे समय पर प्यार के साथ श्रद्धा से उसका हृदय भर-भर आता, उसका कितना मान था, चुन्नीलाल के मन में। पीड़ित दृष्टि से उसकी ओर देखकर बोली—"काहे पैंदल आये इत्ती दूर, ताँगा कर लेते ?"

दयनीय स्वर में चुन्नीलाल ने उत्तर दिया--"कर तो लेता,

पर जेब में एक अधेला भी तो नहीं था।" फिर मानो अपने से ही कहा--"तनखा से गुजर कैसे चले किसना की माँ, इत्ती महँगी, ऊपर से चन्दा किसना की पढ़ाई का खरच, किसना नौकरी कर लेता तो काहे लालच में फँसता मैं ?"

सीता थी दूर, धीरे से कही यह बात उसने तो सुनी नहीं पर चन्दा ने सुन ली, तत्क्षण पूछा--"कैसा लालच बापू ?"

"लालच !" चुन्नीलाल एकदम घबरा गया--"नहीं-नहीं बेटा, लालच की बात नहीं है, वो तो यों ही···मैं कहूँ···चन्दा···· बेटा जरा पानी तो ला लोटे में।"

चुन्नीलाल की इस घबराहट ने चन्दा को विस्मित तो कर दिया किन्तु आगे कुछ पूछा नहीं उसने। एक लोटे में पानी लाकर उसने चुन्नीलाल के हाथ में दे दिया, गट्-गट् कर चुन्नीलाल लोटा भर पानी पी गया। पानी पीकर उसकी घबराहट कुछ कम हुई।

ज्वार की मोटी-मोटी रूखी रोटियाँ और कद्दू का साग, दो गिलास पानी भरकर आसन पर बैठ चन्दा ने अभी-अभी नहाकर आये चुन्नीलाल को पुकारा--"रोटी खा लो बापू।"

"आया बेटा।"

दो मिनट बाद ही खाली धोती पहने चुन्नीलाल थाली पर आकर बैठ गया। पेट की भूख ने न मोटी रूखी रोटियाँ देखीं न तीखी मिर्च वाला साग, पेट भर खाना खाकर चन्दा और चुन्नीलाल उठ खड़े हुए।

खा पीकर सीता भी बापू-बेटी के पास आ बैठी, चुन्नीलाल और दिनों तो इस समय तक खर्राटे भरता होता था, पर आज वह बार-बार चंचल हो उठता था। चन्दा की दृष्टि ने उसकी इस विकलता को पकड़ लिया था, बोली--"आज बात क्या है बापू ? तुम चिन्तित लगते हो ?"

"नहीं री, थकान है, सो चिन्तित लगता होऊँगा, तुम सोम्रो जाकर, मैं भी सोता हूँ।"

सीता ग्रौर चन्दा के ऊपर चले जाने पर चुन्नीलाल उठा ग्रौर रोज की तरह दरवाज़े को ताला लगाकर बाहर चबूतरे पर जा बैठा, करीब ग्राधे घंटेतक वही बैठा वह बीड़ी फूँकता रहा। ग्रन्त में वह उठा, ग्रौर चोर की भाँति चल दिया।

रात के ग्यारह बजे का समय था, भज्जू हलवाई की दूकान खुली थी। गणेशी भी कहीं दिखाई नहीं दिया तो चुन्नीलाल भज्जू हलवाई की ग्रोर बढ़ गया--"जै रामजी की।"

भज्जू उसे देखकर बड़ा चकराया, उसे ऊपर से नीचे तक देखकर वोला--"तू ग्रौर यहाँ ?"

चुन्नीलाल का जी यद्यपि हार ग्रौर जीत की लहरों में उलझा हिचकोले खा रहा था पर ऊपर से मुस्कराता हुग्रा वोला — "तुम्हारी यारी खींच लाई।"

भज्जू ऊँचा पूरा दैत्य के जैसा था, वोला—"जा बे यार के बेटे, ग्राज तक तो यारी ने खींचा नहीं, ग्राज कहाँ से खींचा ? सच्ची वोल वेटा, यारी ने खींचा या गणेशी के सुपने ने ?" कहते हुए उसने दायें हाथ से चुन्नीलाल की पीठ पर ऐसा धौल जमाया कि वह मुड़कर सीधा हो गया।

"मार दिया बे हलवइये तूने।"

भज्जू कुछ कहता कि तभी गणेशी ग्राता दिखाई पड़ा— "तो गणेशी ग्रौर रामजी भाई भी ग्रा गया।"

चुन्नीलाल ने पलट कर देखा, ग्रपनी मोटी तोंद के साथ हाथी की तरह हिलता रामजी भाई सबके बीच ग्राकर खड़ा हो गया, इस "बाजार" का सबसे बड़ा सेठ था वह, खुद कभी नहीं खेलता पर खेलने वालों के लिये 'चारे' का इंतजाम बराबर करता रहता

था। इसीलिए खिलाड़ियों ने एक स्वर से उसकी अभ्यर्थना की—
"जैरामजी की।"

तभी गोवर्धन की दुकान के किवाड़ खुले, उसके पास फोन था जो उसने इसी काम के लिये रख छोड़ा था।

भाव रात के ठीक बारह बजे खुलता था, गोवर्धन की दूकान की दीवाल घड़ी के काँटे बारह के पास बढ़ते जा रहे थे साथ ही चुन्नीलाल के हृदय की 'धक्-धक्' भी। उसके हाथ बर्फ की तरह ठंडे होते जा रहे थे। हाय रे! आज दो का भाव नहीं खुला तो क्या होगा। रामजी भाई की उधारी वह कैसे चुकायेगा और यदि किसन ने सुन लिया तो। किशन का स्मरण आते ही चुन्नीलाल काँप गया। किशन से वह बहुत घबराता था। उसके ललाट पर पसीने की मोटी-मोटी बूँदे उभर आयीं।

दीवाल घड़ी के बारह के घंटे बजने लगे, सारे आदमी स्तब्ध हो रहे, चुन्नीलाल बार-बार अपने ओठों पर जबान फिराने लगा।

गोवर्धन ने लपक कर क्रेडल पर से टेलीफोन का चोंगा उठाया—"हलो क्या रहा भाव!" चुन्नीलाल पलक झपकाना भूल गया।

"हलो, आखिरी भाव क्या रहा जरा जोर से बोलो, पौने दो रुपये तोला?"

बाजार में भूकम्प आ गया—"पौने दो रुपये का भाव रहा, अरे गणेशी का सपना!"

"अरे साला झूठा है, उसकी माँ की……मारो साले को।"

गणेशी ने इस पर हाथ ऊँचे कर दिये, करुण कंठ से कहा—"मार लो भाइयो, पर कोई तुम्हीं तो नहीं डूबे, मेरा भी तो गया।"

चुन्नीलाल का शरीर सुन्न पड़ गया था। उसकी आँखों में

अँधेरा फिरने लगा तो वह आँखें बंद कर, पटरे पर बैठ गया—"रामजी भाई के पाँच रुपये, पाँच रुपये ?"

जो जीते थे उनके चेहरे खिले हुए थे, जो हार गये थे वे कल की आशा पर अपने दु:खी मन पर मरहम लगा रहे थे एक चुन्नी-लाल ही ऐसा था जो गूँगे की तरह बैठा था।

"चुन्नी," गणेशी ने उसे हिलाया—"यार सुपना झूठा हो गया, खुद तो डूबा ही पर तुझे भी ले डूबा, मुझे बड़ा रंज है यार।"

घर जाते-जाते रामजी भाई इधर पलट आया बोला—"रंज की इसमें के बात है अब तू जाने इस खेल में हार-जीत तो चले ही है। आज हारा तो के हुआ, कल जीतेगा। रुपये की तू फिकिर न कर चुन्नी, और ले लेना, सब वसूल हो जायेंगे, मेरा तो धरम तुम लोगों की सेवा करना है। अच्छा अब मैं चलूँ, जै महावीर जी की।

चुन्नीलाल के कान में एक भी बात नहीं गई। सिर झुकाए, शराबी की तरह लड़खड़ाता हुआ वह चल दिया।

दूर खड़ा गणेशी दु:खी नेत्रों से उसे जाता देखता रहा।

× × × ×

: ५ :

किसी आदत का मन में घर कर जाना मनुष्य को पतन की कितनी गहरी खाई में ढकेलता चला जाता है, इसका जीता-जागता उदाहरण चुन्नीलाल बनता जा रहा था। वह सीधा था, भोला था और अब वही सबके सो जाने पर दबे पैरों उठता और 'बाजार'

में पहुँच जाता रामजी भाई के पाँच के आगे न जाने कितनी संख्याएँ बढ़ती गयीं पर चाँदी की चमक—और जीत के मोह ने उसे इस तरह फंदे में फँसाया कि दिन-पर-दिन उसके पैर और भी मजबूती से उस फंदे में जकड़ते चले गये।

जैसे-जैसे चुन्नीलाल कर्ज की खाई में उतरता गया तैसे-तैसे किशन का व्यवहार भी उसके साथ सुधरता गया। कालेज खुलते ही उसने प्रथम वर्ष कला में अपना दाखला करवा लिया और फिर चुन्नीलाल से बोला—"किताबों के लिये रुपयें चाहिए, पच्चीस अभी दे दो, बाकी अगले महीने में दे देना।"

"अच्छी बात है, शाम को ले लेना।"

किशन प्रसन्न मन से चला गया, चुन्नीलाल ने उठकर बेमन से ठाकुरजी की सेवा की। एक समय था जब वह रोटी भी इतने चाव से नहीं खाता था जितने चाव से ठाकुर जी की सेवा किया करता था। लगता था श्रद्धा का यह भाव 'बाजार' के फेर में कपूर-सा उड़ गया है– "रोटी रख।"

"रखती हूँ।" हाथ रोक कर सीता उठी। थाली में रोटी और दाल लाकर चुन्नीलाल के सामने रख दिया।

चुन्नीलाल ने पहला कौर तोड़ा और सीता ने चक्की की घर-घराहट के साथ प्रलाप भरी—

"घट्टी म्हारी वैण बणी जी जनम-जनम को साथ,
संघ मकई को खीचड़ो पिया जियाऊँ आज।"

(चक्की मेरी बहन बन गई है, इसका मेरा जन्म-जन्म का साथ है, मकई की खिचड़ी बनाकर आज मैं अपने प्रियतम को खिलाऊँगी)

"आक् थू!" चुन्नीलाल ने उठकर मुँह का कौर नाली में थूक

दिया और वहीं से गरजा—"हरामजादी राँड़, काम करे न धाम और रोटी भी इससे ठीक से नहीं बने, दाल में इत्ता नमक क्यूँ डाला ? अब खिला दे जाके बाप को।"

सीता का कंठ जैसे किसी ने दबा दिया, चक्की पीसना रोक कर वह चकित भीत हिरणी की तरह चुन्नीलाल की तरफ ताकने लगी, चिल्लाना तो दूर चुन्नीलाल ने पहले कभी आँखें लाल तक नहीं की थीं, उसका भाग्य अच्छा था कि किशन और चन्दा दोनों ही घर में नहीं थे वरना वह कैसे मुँह उठाती उनके सामने।

"खाले सुसरी तू ही।" चुन्नीलाल ने दन्न से थाली को ठोकर मारी। तीखी कटोरी उछलकर सीता के ललाट पर गिरी और फक्र से मांस में घुस गई। खून बह निकला। चुन्नीलाल ने मुड़कर देखा तक नहीं। उसका संतुलन कभी का डगमगा चुका था, जो वह पहले था वह कहीं खो गया था और जो वह आज था एक जुआरी और दगेबाज रह गया था। आड़ा-टेढ़ा साफा सिर पर रख कर वह आँधी की तरह घर से बाहर निकल गया।

सीता की आँखें पहले तो फटी-की-फटी रह गयीं, फिर धीरे-धीरे उनमें पानी भर आया। एक अच्छे खाते-पीते घर की बेटी थी वह। बाप के पास बीसेक बीघा जमीन थी, घर के गाय-भैंस थे, चार भाइयों की एक बहन थी सीता सो घर-भर की दुलारी थी। घर में सबसे अच्छा खाने और पहनने को मिलता था।

चुन्नीलाल के माँ-बाप कब मरे उसे मालूम नहीं, यहाँ-वहाँ खा पीकर वह बड़ा हुआ था इसलिए आरम्भ से ही जरा मस्त तबियत का था। पैसा पास में होता तो जुआ खेलता, भाँग घोंटकर पी जाता, न होता तो फाके भी कर लेता। सीता के आने से पैर में बेड़ी पड़ गई। तनखा का एक-एक पैसा वह उससे वसूल

लेती। हाल यह हुआ कि चुन्नीलाल अपनी सारी मस्ती भूल गया; न कभी सट्टे की याद आई, न भाँग से ही गला तर करने की सूझी। वफादार नौकर की तरह वह सीता के आगे-पीछे फिरा करता था, पर आज ! उसने उसे गाली दी, परोसी थाली को ठोकर मार दी और वह भी इतनी-सी बात पर। बहुत देर तक रो चुकने के बाद वह उठी, लोटे में पानी लेकर मुँह धोया, फिर मिट्टी के तेल में कपड़ा भिगो घाव पर रख पट्टी बाँध ली।

ठीक ग्यारह बजे किरण और चन्दा हँसती हुई घर में घुसीं। किरण ऊपर जाते-जाते बोली—"खा कर ऊपर आना।"

चटपट किताबें ताक में रख चन्दा हाथ धोकर रसोई में आई—"रोटी दे, अरे, ये क्या हुआ ! सिर पर पट्टी क्यों बाँध रखी है ?" सीता के मुख पर दृष्टि जाते ही चन्दा अपने पेट में भूख से कुलबुलाते चूहों को भूल गई।

आँसू फिर आँखों में मचलने को ही थे कि सीता ने अपने को सम्हाल कर बात बना दी—"चढ़ान में पैर फिसल गया बेटा।" स्वाभाविक भाव से मुस्करा कर आगे बोली—"बहुत चोट नहीं लगी री, चल बैठ, रोटी खा।"

सीता के स्वाभाविक स्वर से संतुष्ट होकर चन्दा खाने बैठी—"तू नहीं खायेगी ?"

चुन्नीलाल ने थाली फेंक दी थी, गाली दी थी, पर वह भूखा चला गया था, जान निकल जाने पर भी सीता के गले से रोटी नीचे नहीं उतर सकती थी, चन्दा से सच बात क्या कहती, बोली—चौथ है न आज, बरत है मेरे, चाँद बाबा दीखने पर खाऊँगी।" सीता बैठी कुछ सोच रही थी, खा पीकर चन्दा उठ खड़ी हुई तो उसने धीरे से पूछा—"क्यों री, दाल में नमक जादा है के ?"

"नहीं तो !"

सुनकर सीता की छाती में जैसे छुरी चुभ गई। "बिना कसूर अपमानित हुई थी वह, मानो गाली निकालने का कोई बहाना ही खोज रहा था चुन्नीलाल। ऐसा हो क्या गया है जो 'वे' इतने क्रोधी हो गये हैं आजकल ? पहले कभी एक बात नहीं कहते थे, आज कैसे फट पड़े।" उसने चन्दा से पूछा—"क्यूँ री चन्दा तेरे बापू का दफतर कित्ता दूर है ?"

"दो-तीन मील होगा, क्यों क्या बात है ?"

पति के रूठकर भूखे जाने की बात पुत्री से कहते सीता झिझक गई—"नहीं री, यों ही पूछे थी। मेरा माथा बड़ा घूम रहा है बेटा, मैं जरा सो लूँ, किसना आये तो रोटी रख देना। कहकर सीता ने जमीन पर चटाई बिछाई और ओढ़नी से मुँह ढँककर लेट गई।

एक बजे के करीब किशन आया, माँ को आवाज देनी ही चाही थी कि चन्दा ने देख कर रोक दिया—"माँ को मत जगा !"

किशन ने भवें चढ़ाईं—"क्यों ?"

"सीढ़ी में गिर गई तो सिर में घाव हो गया, तू हाथ मुँह धोकर कमरे में बैठ, मैं रोटी लाती हूँ।"

सीता की ओर देखता हुआ किशन अन्दर चला गया। दो ही मिनट में थाली में दाल-रोटी लिये चन्दा भी आ गई।

किशन खाते-खाते बोला—"कच्चा प्याज हो तो जरा काट-कर नमक मिर्च मिलाकर ले आ, अकेली दाल से तो रोटी मुँह में चलती ही नहीं।"

चन्दा हँसकर चली गई कच्चे प्याज की चूरी बनाकर उसने थाली में लाकर रख दी, हँसकर कहा—"अब चलेगी ?"

खा-पीकर किशन बिछौने पर आकर लेट गया। चन्दा ने उसे सोने की तैयारी करते देखा, झुँझला कर उसकी बाँह में चुटकी भर ली। किशन उछल पड़ी—"बिल्ली कहीं की नोचती क्यों है ?"

"तो तू सोता क्यों है ?"

"तो फिर क्या करूँ, पूजा करूँ तेरी ?"

"सोने से वह कहीं अच्छी चीज है।"

किशन की आँखों में घुसती नींद हवा हो गई, वह उठकर बैठ गया और चन्दा की चोटी पकड़ कर खींचता हुआ बोला—"यहाँ आ पूजा करूँ तेरी।"

"हाय रे यह क्या करता है, बाल तोड़ेगा क्या मेरे? छोड़ न।"

"पूजा कर रहा हूँ।" कहकर किशन ने एक और झटका दिया और चन्दा उसके कन्धे पर आ गिरी। हँसते-हँसते उसकी आँखों में पानी आ गया था। किशन ने भी हँसकर उसके बाल छोड़ दिये। चन्दा खिसक कर दूर जा बैठी, बोली—"गधे से पूछिये श्रीमान् विना ऋतु का यह गर्धभ गान कैसा ?" तो वह कहेंगे, यह मेरा स्वभाव है। किशन जी से पूछिये, क्यों साहब घर में मौन और दोस्तों से चक्-चक् यह क्या बात हैं ? तो वह कहेंगे, साहब गधे से पूछिये। आखिर हूँ तो उसीका शार्गिद' वाह रे मेरे दादा।"

चन्दा परिहास प्रिय तो थी ही, बड़े मजे से उसने किशन की गधे से तुलना कर डाली। सुनकर किशन बहुत हँसा, बोला—"मेरे दोस्तों से तू क्यों जलती है ?"

चन्दा मुँह बनाकर बोली—"इसलिए कि उन्होंने तुझे हम सबसे छीन लिया है। ऐसी भी क्या यारी कि मनुष्य का घर में पल भर भी मन न लगे।"

"घर, घर है यह ?"

चन्दा ने ईंट का जवाब पत्थर से दिया—जो है, वही क्या कम है, बहुतों को तो यह भी नसीब नहीं होता। मुझे आज तक यह बात समझ में नहीं आई कि हम सबसे इतना दूर-दूर तू आखिर क्यों रहता है। हम लोगों को तू क्या समझता ही नहीं। अपनों को इस तरह दुत्कारना उचित नहीं है दादा।"

सच बात सदा कड़वी लगती है, किशन को भी यह ताना अखरा तो वहुत पर वह टाल गया।

उसने करवट बदली और सोने के लिये आँखें बन्द कर लीं।

चन्दा थोड़ी देर देखती रही फिर एक साँस भर कर उठ खड़ी हुई। किरण आने को कह गई थी, चन्दा को दूसरा काम भी नहीं था। वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगी।

पलंग पर बैठे सुरेश और किरण 'रमी' खेल रहे थे। सुरेश ने शायद कोई बेइमानी की थी, इसी कारण किरण चिल्ला रही थी—"वाह मैंने तो ईंट का सत्ता फेंका था, तुमने पान का पंजा कैसे उठाया ? बेइमान कहीं के।"

चन्दा दरवाजे पर खड़ी मुस्करा दी। सुरेश उसे देखते ही बोला—"अच्छा चन्दा तू ही बता, इसने तीन राउन्ड पहले पान का पंजा फेंका, उस समय वह मुझे 'सूट' नहीं करता था सो नहीं लिया अब करता है तो यह बेइमान कहती है। भई पत्ता फेंका तो इसी ने है न, इस राउण्ड में फेंका हो या पहले के राउन्ड में, यदि मैं इसका तीन राउन्ड में फेंका पत्ता अब उठाता हूँ तो इसमें बेइमानी क्या हुई ?"

चन्दा हँस पड़ी—"वाह बड़ी भारी ईमानदारी है यह तो।"

शह पाकर किरण और भी उछली—"लो अब करो बेइमानी, फेंको पत्ते और लिखो अपने 'पैनाल्टी' के सौ 'पाइण्ट'।"

"अरे वाह !" चन्दा ने किरण का साथ दिया—"बेइमानी की है तो सजा भी भुगतनी पड़ेगी।"

आखिर सुरेश को अपने सौ पाइन्ट किरण को देने पड़े।

किरण चन्दा से बोली—"बैठ, खेलेंगे।"

चन्दा बैठती हुई बोली—"पैसे-वैसे नहीं हैं अपने पास।"

सुरेश बोला—"अच्छा पैसे से नहीं, पर एक दूसरी शर्त के साथ खेलो मैं हारा तो तुम दोनों को पिक्चर दिखाऊँगा, किरण हारे तो वह हम दोनों को चाय-नाश्ता खिलाये और यदि चन्दा हारे तो वह हमें दो गाने सुनाये, बोलो—है मंजूर ?"

शर्त स्वीकार हो गयी। घंटे भर तक तीनों खेलते रहे। अन्त में जब हार-जीत का निर्णय हुआ तो सुरेश अस्सी प्लस में था और चन्दा पचास तथा किरण तीस माइनस में, शर्त के अनुसार किरण चाय-नाश्ता तैयार करने रसोई में चली गई।

चन्दा वहीं बैठी रही। ब्राह्मण के चौके में वह जा भी तो नहीं सकती थी। जब तक किरण साथ थी वह भी उसी स्वतंत्रता से सुरेश से बातें कर रही थी, जिस तरह किरण करती थी, पर किरण के जाते ही संकोच ने उसे आ दबाया। पता नहीं क्यों इस बार वह सुरेश के सामीप्य से इतनी संकुचित हो जाती थी ? जबकि पिछले साल किरण की तरह ही वह उसके कन्धों पर झूला करती थी, किरण के जाते ही चन्दा ने शर्माकर मुँह झुका लिया।

सुरेश ने उसे छेड़ा—"अब तो तू बड़ी शरमाने लगी है चन्दा, ठीक जैसे नई दुल्हन शरमाती है, कहीं पक्का-वक्का हो गया है क्या ?"

चन्दा शर्म से दोहरी हो गई—"हिश।"

सुरेश हँस पड़ा—"हिश क्या ? जरूर चुन्नीलाल ने सगाई-वगाई कर दी है तेरी तभी इतना शरमाती है। क्यों है न यही बात ?"

'हाय अब इन्हें कौन समझाये?' मन-ही-मन जरा साहस इकट्ठा किया चन्दा ने, फिर और भी झुक कर बोली–"खुद ही ने कर ली होगी ?"

"अब खुली चोंच! करने की सोच तो रहा हूँ मैं। एक लड़की ढूँढ़ी है मैंने।"

स्वर में अविश्वास भर कर चन्दा बोली––"झूठ।"

"तेरी कसम रे, बड़ो सीधी है गरीब, पर है बड़ी सुन्दर, ऐसी लट्टू हुई है मुझ पर कि....फिर जरा अकड़ कर कहा–– "हैं ही, हम ऐसे कि जो देखे लट्टू हो जाये।"

इस बार चन्दा खिल कर हँस पड़ी–"अरे वाह रे! अपने मुँह मियाँ मिट्ठू, शकल भी देखी है कभी अपनी आइने में। ऐसे ही तो सुन्दर हैं बेचारे कि जो देखेगा वही रीझ जायेगा।"

हाथ में चाय की ट्रे लेकर अन्दर आती किरण ने कमरे के बाहर से यह बात सुनी। अन्दर आ कर उसने ट्रे मेज पर रख दी, फिर कहा––"कौन, किस पर लट्टू हो रहा है, जरा हम भी तो सुनें?"

सुरेश ने चट से कहा––"यह तेरी चन्दा ही रीझ रही हैं मुझपर, कितना समझा रहा हूँ यह सरासर गलत बात है कि तू मुझपर रीझे पर जनाब अड़ गई हैं ये अपनी जिद पर।"

सुन कर चन्दा की आँखें फट-सी गयीं—"क्या ?"

"बोली नहीं अभी तू कि जो देखेगा वही लट्टू हो जायेगा ?"

सुरेश ने किया था परिहास पर चन्दा ने रो दिया; सिसकती हुई बोली––"गलत, एकदम झूठ है, यह बात मैंने यह नहीं कहा, सौ बार नहीं कहा।"

चले थे हरि भजन को ओटन लगे कपास वाली हालत हो

हि० हिन्दी ... कल्याणी ... पुस्तकालय

9588

गई सुरेश की, बगलें झाँककर बोला—"ये तो रोने ही लगी। मैं तो मजाक कर रहा था और तू सच ही समझ बैठी? छिः चन्दा, इतना-सा मजाक भी सहन नहीं कर सकती तू?"

पर चन्दा के आँसू रुके ही नहीं। "बड़े हैं न हमसे, ऊँची जात, ऊँचे खान्दान के तभी न ऐसी बात कह दी।" सोच कर चन्दा को और भी रोना आया, सुरेश का मुँह जरा-सा निकल आया इधर किरण उसे मना-मनाकर थक गई, उस पर भी जब चन्दा का रोना बन्द न हुआ तो वह रुँआसे स्वर में सुरेश पर चिल्लाई—"अब करो न चुप, जरा नहीं देखते किससे क्या कहना चाहिये, माँगो माफी।"

सुरेश हारे स्वर में बोला—"माफी माँगता हूँ, चन्दा फिर कभी ऐसी गलती नहीं होगी, कहकर वह उठा और नीचे उतर गया।

रह गई चाय, रक्खा रह गया नाश्ता। सुरेश के चले जाते ही चन्दा का रोना बन्द हो गया, मन-ही-मन वह स्तम्भित रह गई। फिर उसने किरण की ओर देखा। एक अजीब-सी हलचल उसे अपने हृदय में अनुभव हुई। यह अनुभूति एकदम नई थी, उसके लिये सुरेश उसे रुलाकर माफी तक माँग गया था; फिर कहाँ रहा ऊँची जात; ऊँचे खान्दान का अभिमान। चन्दा का हृदय बैठने लगा, उसी के कारण सुरेश चाय छोड़कर चला गया। उसकी आँखों में व्यथा आ भरी, भरे कंठ से बोली—"मैं अब नहीं रोऊँगी किरण।" फिर चुप हो गई, इसके आगे वह और करती भी क्या?

—:०:—

: ६ :

दो-तीन दिन निकल गये। मन-ही-मन तड़पते रहने पर भी, चन्दा ऊपर नहीं गई। सुरेश के सामने जाने का साहस जैसे रहा ही नहीं था उसमें, किरण और वह यद्यपि अभी भी साथ ही स्कूल जाती और आती थीं; पर पहले जहाँ बात का विषय सुरेश के चारों ओर घूमा करता था वहाँ इन दिनों उसके बारे में एक भी बात नहीं हुई। किरण तो यह समझ कर शान्त रही कि सुरेश का प्रसंग चन्दा को कदाचित् सह्य नहीं होगा और चन्दा यह सोचकर मन-ही-मन घुटती रही कि नीच समझ कर ही किरण ने सुरेश के बारे में कुछ कहना-सुनना छोड़ दिया है।

ऊपर छत पर जाने की उसकी आदत थी, डूबते सूरज को देखना उसे बड़ा प्रिय लगता था, वह दृश्य देखे कितना समय निकल गया। चन्दा व्याकुल हो कमरे में चक्कर काटा करती, मन उसका बिल्कुल ही नहीं लगता था इन दिनों।

"चन्दा, ऊपर छत पर बड़ियाँ सुखाई थी मैंने, सूख गई होंगी, उठा तो ला बेटा!"—माँ ने कहा।

"ऊपर", और चन्दा जैसे पत्थर हो गई।

क्या करती, भीत-दृष्टि से इधर-उधर देखती हुई वह ऊपर छत पर पहुँची। छत सुनसान थी। चन्दा बारजे पर जाकर खड़ी हो गई। आकाश का सूरज लाल होकर धरती माँ की छाती फाड़ कर अन्दर डूबता चला जा रहा था। देखते-देखते हठात् ही चन्दा की आँखें भर आईं, बच्ची नहीं थी वह। तरुणाई की सीमा में पैर रख चुकी थी। मन के भाव समझने की बुद्धि आ गई थी उसमें, तभी तो जैसे खट् से उसके मन में बजा, "कहाँ वे, कहाँ मैं ?" और उसकी आँखें भर आईं।

"उसके पागल मन ने किस दुर्लभ चादर से अपनी गाँठ बाँधनी चाही है ?" बारजे की मुंडेर पर मस्तक झुकाकर वह चुपके-चुपके रोने लगी।

सुरेश अभी-अभी ऊपर आया था। चन्दा को खड़े देखकर पहले तो सोचा वापस नीचे चला जाए, आखिर वह चिढ़ती है उससे, तो उसके सामने आया ही क्यों जाये; पर तभी उसने चन्दा को मुंडेर पर झुकते देखा और वह चौंककर आगे बढ़ गया, दूर से ही बोला—"यह क्या करती है चन्दा, नीचे गिर जायेगी।" दूसरे ही पल वह उसके पास पहुँच गया।

चन्दा को दूने वेग से रुलाई आई; वह मुँह उठा ही नहीं सकी।

"चन्दा !" बड़े ही कोमल स्वर में सुरेश ने पुकारा; फिर धीरे से उसकी पीठ पर हाथ रख दिया। इस स्पर्श से चन्दा की सारी देह पत्ते की तरह काँप गई। "अभी तक नाराज है ?"

चन्दा ने लाख कहना चाहा, 'नहीं'; पर मुँह में जीभ ही जैसे अकड़ गई। काँपती देह से वह उसी तरह मुँडेर पर मुँह रखे रही।

सुरेश दुःखी कंठ से बोला—"इस बार तुझे क्या हो गया है, चन्दा ! पहले तो कभी इतनी-सी बात पर नाराज नहीं होती थी, तेरी कसम मुझे जो मालूम होता कि साल भर में ही तू इतनी बदल गई है तो कभी बोलता भी नहीं तुझसे। तू क्या जाने, इन दिनों कितना दुःख पा रहा हूँ मैं।"

अब तो हद हो गई थी। चन्दा सहन नहीं कर पाई, झटके से मुँह उठा कर, सिसकती हुई बोली—"मैं कौन हूँ यह आप अच्छी तरह जानते हैं; फिर ऐसा मजाक क्यों किया, जो असम्भव है वही बात आपने मुँह से निकाली कैसे ?"

इस बार सुरेश ने मुँह झुका लिया। कहा—"असम्भव है तभी तो मजाक में दिल का पाप निकाल दिया, तू बुरा मत मान।"

चन्दा को रोने का बहाना मिल चुका था। खूब रोई, सुरेश असहाय-सा देखता रहा। बहुत देर बाद शान्त होकर चन्दा ने साड़ी के पल्ले से अपनी आँखें पोंछ डालीं, भर्राए स्वर में बोली—"छोटे मुँह बड़ी बात कही है मैंने, मुझे माफ कर दो दादा!"

"नाराज तो तू है, मैं थोड़े ही हूँ।"

मन-ही-मन चन्दा ने कहा—"नाराज हूँ या अपने अभाग्य पर रोती हूँ, यह तुम्हें कौन बतायेगा?" मुँह से कहा—"न सही तुम नाराज पर क्या मुँह से किसी के मन की शान्ति के लिए 'माफ किया' भी नहीं कह सकते?"

सुरेश दंग रह गया। यह बात तो बच्ची के जैसी नहीं थी। तो क्या सचमुच अब चन्दा बड़ी हो गई है। चकित भाव से धीरे-धीरे कहा—"अच्छा ऐसा ही है तो माफ करता हूँ।"

चन्दा ने मुँह उठा कर देखा। उसके पीले पड़े चेहरे पर लाली आ गई। धीरे से मुस्करा कर वह बड़ियाँ समेटने लगी।

दो-तीन दिन बाद ही 'राखी' आई। किरण ने बड़े चाव से सुरेश को राखी बाँधी। आशा थी, कमाऊ भाई ढेर से रुपये देगा; पर सुरेश राखी बँधवाकर उठ बैठा तो किरण रुआँसी हो आई—"कंजूस कहीं के, अभी से बहन को देते जान निकलने लगी, शादी होने के बाद लेना-देना तो दूर, शायद सीधे मुँह बात भी नहीं करोगे?"

सुरेश हँस पड़ा। किरण की माँ किरण का पक्ष लेती हुई बोली—"निगोड़े! शरम ना है तुझे। दे दे, खाली हाथ कोई राखी ना बँधावो करै। चल निकाल, का है तोरे खीसे में।"

अब सुरेश ने कुरते की जेब में हाथ डाल कर दस-दस रुपये के तीन नोट हाथ में लेकर सिर के ऊपर नचाना आरम्भ किया। किरण उसे पकड़ कर झूल गई; पर कहाँ सुरेश छः फुट का कहाँ वह जरा-सी लड़की। उसका हाथ नोटों तक नहीं पहुँच पाया। सुरेश बराबर उसे चिढ़ाता जा रहा था—"पैसे के पीछे राखी बाँधती है, मतलबी कहीं की।"

किरण की माँ खूब हँसीं, अन्त में जब किरण थक गई तो चुपचाप एक कुर्सी पर जा कर बैठ गई।

"बस हार गई, ये ले।" सुरेश ने किरण की गोद में रुपये डाल दिये।

किरण तो यह चाहती ही थी। नोट हाथ में लेकर वह सुरेश को अँगूठा दिखाती हुई, खिलखिलाती हुई भाग गई।

नीचे चन्दा ने किशन के मस्तक पर रोली का टीका लगाया, दाहिने हाथ में राखी बाँधी फिर अपने दोनों हाथ उसके सिर से छुआकर अँगुलियाँ चूम लीं।

पता नहीं क्यों किशन की आँखें छलछला आयीं। वह जल्दी से उठकर घर से निकल गया। "जितना स्नेह चन्दा करती थी, उसका आधा भी वह क्या कभी कर पाया? उसे माँ-बाप के प्रति उसके मन में आक्रोश था; क्यों था?" वही जाने! पर चन्दा से कभी दुर्भाव नहीं किया था उसने। उसी चन्दा को वह आज के दिन एक पाई भी नहीं दे सका। असमर्थता का यह काँटा ऐसा चुभा उसकी छाती में कि वह उससे एक बात भी नहीं कर पाया, भाग खड़ा हुआ।

राखी की थाली उठाकर चन्दा कमरे में रख आई। मन उसका बहुत ही निर्मल, बहुत ही स्वच्छ था। कोई काँटा, कोई चुभन बाकी नहीं रह गई थी।

गुनगुनाती हुई वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगी।

सुरेश कमरे के द्वार पर ही मिल गया--"ए ! राखी बाँधेगी ? रुपये मिलेंगे।"

चन्दा शान्त स्वर में बोली--"मैं रुपये के लिए कभी किसी को राखी नहीं बाँधती।"

सुरेश आँख का कोना दबा कर बोला--"पर किरण तो इसीलिए बाँधती है, न माने तो पूछ देख। किरण ने कमरे के अन्दर यह बात सुनी।

बाहर आकर उसने घपाधप छः-सात मुक्के सुरेश की पीठ पर जमा दिये। बोली--"हाँ, बाँधते हैं, बाँधते हैं, बाँधते हैं।" चन्दा ने मुस्करा दिया।

थोड़ी देर में ही किरण सुरेश की सुलह हो गई। आज फिर वे तीनों 'रमी' खेलने बैठे, शर्त भी वही रही और परिणाम भी वही निकला। सुरेश किरण से बोला--"बना चाय।"

"नहीं, पहले चन्दा का गाना सुनेंगे।"

"यह भी ठीक है, शुरू हो जा चन्दा।"

चन्दा हारी हुई थी। पहले तो मन में झिझकी ; फिर धीमे स्वर से उसने महादेवी वर्मा और 'पन्त' के दो गीत गाए। कंठ उसका सुरीला था ही और गीत गाये भी मन से थे। सुनकर सुरेश मुग्ध हो गया, किरण प्रसन्न मन से बोली--"अरी ! कितना अच्छा गाती है तू ! भगवान् ने बड़ी फुरसत में बनाया है तुझे।" फिर जैसे अपने से ही बोली--"काश ! तू भी ब्राह्मण होती तो कभी तुझे नहीं छोड़ती।" फिर चली गई।

"कैसी बात कह गई थी किरण। चन्दा का मन जैसे पागल हो गया।" जिस भाव को वह दबाना चाहती थी, किसी-न-किसी बात से वह फिर उभर उठता था और वह घबरा जाती थी। "यह

उसे क्या होता जा रहा है। धरती का जीव होकर आकाश का चंदा पाने की लालसा क्यों घर करती जा रही है उसके मन में।"

मुँह झुकाए वह चुपचाप बैठी रही।

सुरेश भी कुछ नहीं बोल पाया। अखबार उठा कर उसके पन्ने उलटने लगा।

किरण आई तब भी ये दोनों इसी तरह बैठे थे। चाय की ट्रे मेज पर रखकर किरण बोली—"अरे, आज भी लड़ पड़े क्या ?"

सुरेश ने अखबार रख दिया और चन्दा सीधी हो गई, धीरे से बोली—"तुझे बस लड़ाई का ही सपना आया करता है।"

किरण हँसकर चाय बनाने लगी, तीन कप बनाकर उसने गरम-गरम पकौड़े की प्लेट बीच में रखकर कहा—"अच्छा, अब चाय पी।"

चन्दा ने चाय का कप तो अपनी ओर खींच लिया पर नाश्ते की प्लेट को हाथ नहीं लगाया, सुरेश ने देखा तो कहा—"खा न।"

चन्दा संकुचित होकर बोली—"मुझे अलग प्लेट में दे दे किरण ! माँ जी देखेंगी तो गुस्सा होंगी।"

मन्द मधुर स्वर में बजते सितार के तार कोई तोड़ दे, वैसा ही धक्का चन्दा की इस बात से सुरेश और किरण को लगा, वे चौंक पड़े, अपना और चन्दा का सामाजिक और जातीय स्तर भूल से गये थे वे; पर चन्दा तो नहीं भूल सकती थी। जान-बूझ कर यह कैसे सुनती वह हाय-हाय! छू लिया न। ऐसा जो कभी कोई कह देगा तो दुःख और लज्जा से छाती नहीं फट जायेगी उसकी।

किरण का मुँह उतर गया और सुरेश ने फिर अखबार उठा कर आँखों के सामने कर लिया। कुछ पढ़ रहा था वह या नहीं, वही जाने।

—:०:—

: ७ :

चुन्नीलाल कुछ उदास-सा रहता था इन दिनों। जुए के कारण रामजी भाई का पहले ही सिर पर कर्ज बढ़ रहा था, उस पर किशन को पच्चीस रुपये भी उसने उसी से उधार लेकर दिये थे। रुपये वापस देने का न तो अभी तक रामजी भाई ने ही तकाजा किया था, न डर के मारे उसने पूछा ही था कि कुल कितनी उधारी हो गई है। मन-ही-मन में सारी बातें रखने के कारण वह आज-कल बात-बात पर झुंझला उठता था और सीता लाख सिर पटकने पर भी इसका कारण नहीं समझ पाती थी।

राखी आई और चली भी गई, चुन्नीलाल की स्थिति में फिर भी कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। न उससे बजार छूटता था और न सिर से कर्ज ही उतरता था।

एक दिन शाम को दफ्तर से आया तो बड़ा थका-थका-सा था। सीता उसे देखकर एक लोटे में पानी भर कर ले आई। कुल्ला कर चुन्नीलाल ने चन्दा के लिये पूछा—"कहाँ गई चन्दा ?"

"ऊपर होगी।"

"बुला ला। रामजी भाई की दूकान से चाय की पत्ती ले आवेगी, आज रोटी नहीं खाऊँगा, चाय बना दीजो।"

सीता झुंझला गई—"कितनी बार कहा तुमसे कि शाम के बखत लड़की को बाहर मत भेजा करो पर तुम सुनो हो किसी की। आजकल बखत अच्छा नहीं है, लड़की को जात ठहरी, कल को कुछ हो गया तो जात-बिरादरी में मुँह दिखाने लायक नहीं रहेंगे।"

"अब तू तो रास्ते चलते पे ही शक करने लगे तो इसका तो क्या इलाज है। जा बुला ला, कुछ नहीं होगा, किसना से सब डरते हैं।" उसने आवाज दी—"चन्दा"।

"बापू !" हिरनी की तरह उछलती हुई चन्दा नीचे आई।

सीता बड़बड़ाई--"स्कूल से आई और ऊपर भागी जब से भायाजी (सुरेश) आये हैं इसका दीदा नहीं लगे किसी काम के सुबह देखो तो तास, साम देखो तो तास, ताड़-सी हो चली पर अकल रत्ती भर नहीं आई इस छोरी में।"

सीता की बड़बड़ाहट का चन्दा पर कोई असर हो नहीं हुआ। चुन्नीलाल के कन्धे से लगी वह हँसती रही। सीता को बड़ी झुँझलाहट आई--"बिसूरना तो दूर, सुसरी हँसे हैं ऊपर से।" और वह खीजती हुई चौके में चली गई।

बहुत दिनों बाद आज हँसी आई चुन्नीलाल को--"कर दिया न उसे नाराज ? अच्छा बेटा तू जरा रामजी भाई की दुकान से चाय का छोटा डब्बा तो ले आ।"

चन्दा ने हाथ बढ़ा दिया--"लाओ पैसे।"

"पैसे नहीं हैं। कहना खाते में मांड दें।"

"अच्छा !" चन्दा चल दी। रामजी भाई दूकान बन्द कर ब्यालू करने घर जाने ही वाला था कि चन्दा पहुँची। घिर रहे अँधेरे की परतें रामजी भाई की आँखों से फिसल कर जैसे चमकती किरणें बन गयीं।

"चाय का छोटा पैकेट दे दो भाइजी।"

संध्या की सातरंगी चुनरी चन्दा के गोरे चेहरे पर खिसक-खिसक पड़ रही थी, रामजी भाई इस चुनरी को अपने मोटे भद्दे शरीर पर फैलाता-सा बोला--"वाहवा के रूप पायो है ? अरी बैठ तो सही, आजकल तो तू आवे ही नहीं, के बात हुई ?"

चन्दा ने बात टाली--"बापू ने चाय का पैकेट मँगवाया है, कहा है पैसे खाते में लिख दें।"

रामजी भाई की आँखों ने चन्दा को पीना चाहा। चन्दा उसकी आँखों में उभरे कामुक भावों को समझ कर मन-ही-मन तो अवश्य डरी पर वह एक साहसी लड़की थी इस कारण रामजी भाई की आँख-से-आँख मिलाये खड़ी रही। रामजी भाई की आँखों के आगे रूप का समुद्र था, चन्दा पर उसकी पहले से आँख थी और उसे पाने के भरोसे पर ही वह चुन्नीलाल को कर्ज़-पर-कर्ज़ देता जा रहा था।

यह 'छोरी' एक दिन तो 'मेरी' होगी हो, रामजी भाई के मन ने कहा और उसने आतुर होकर चन्दा का हाथ पकड़ लिया, बोला--"एक क्या दस पाकिट ले जा पर एक 'पियार' दे जा।"

चन्दा को क्या मालूम चुन्नीलाल और रामजी भाई के कैसे सम्बन्ध थे। उसने झटके से अपना हाथ छुड़ाकर रामजी भाई को एक धक्का दिया, गुर्राकर बोली--"बाल सफेद हो गये पर प्यास अभी मरी नहीं भाइजी। घर में बहू-बेटियाँ हैं या नहीं ?"

कुछ क्षण चुप रह कर उसने साहस पूर्वक कहा--"छोरी हूँ तो क्या? अब जो वैसी बातें कीं तो जानते हो मेरा भाई किशन है। मुँह के बचे-खुचे दांत एक झापड़ में गिरा देगा।" वह तीर की तरह पलट गई।

घर आकर कह दिया--"दूकान बन्द है।" फिर कमरे में जाकर पढ़ने बैठ गई। पढ़ना तो क्या था, पढ़ने का बहाना भर था। मन ही मन उबल रही थी। किशन घर में होता तो आते ही वह यह घटना उसे बता देती पर वह था नहीं। चन्दा धीरे-धीरे ठण्डी हुई तो सोचने लगी, 'अच्छा हुआ जो दादा घर में नहीं था।' किशन कैसा था छिपा नहीं था किसी से। सुनता तो रामजी भाई की बोटी-बोटी चील-कौओं को खिला देता, फिर चाहे

फाँसी का फन्दा ही उसके गले में क्यों न झूल जाता। 'ना बाबा, वह नहीं कहेगी। चूल्हे में जाये कमीना, अब कभी जायेगी ही नहीं उसकी दूकान पर।'

शरीर आज अच्छा नहीं था चुन्नीलाल का पर जैसे-जैसे रात गहरी होने लगी चुन्नीलाल इस तरह फड़फड़ाने लगा मानों किसी ने पिंजरे में कैद कर दिया हो। जितनी बार वह जीता था उससे दुगना हारा था पर जीत की आशा मन से मिटती कहाँ थी। आज की हार कल की जीत का लालच मन में भर देती और वह एक कदम और खाई में बढ़ जाता। यह तो भला हो रामजी भाई का कि आज तक चुकाने की ताकीद नहीं करी बल्कि हर बार यही कहा—"खेल, खेल चुन्नी, भाग में होगा तो एक के हजार बनायेगा।"

दस बजे होंगे। सीता आजकल नीचे ही सोती थी। उसकी आँखें झपक ही रही थीं कि चुन्नीलाल ने उठकर सिर पर साफा रखा। जरा-सी आहट से ही वह चौकन्नी हो गई, चुन्नीलाल को साफा पहनते देखा तो कहा—"इत्ती रात को कहाँ चले?" उसे अभी तक यह नहीं मालूम था कि चुन्नीलाल घर के डूब जाने के लिए भयंकर भँवरों को निमन्त्रण दे चुका है।

चुन्नीलाल अब सीता से डरता नहीं था। झूठ बोलने, बहाना बनाने में उसकी जबान जरा भी नहीं लड़खड़ाती थी। एकदम द्विधा रहित स्वर में उत्तर दिया—"साब ने मुकुटबिहारी बाबू के यां पोचाने को एक चिट्ठी दी थी। अभी-अभी याद आई है। जाऊँ, चिट्ठी दे आऊँ।"

सीता झुँझलाई—"इत्ती रात को भूतों की तरैं जाकर जगाओगे। कल सुबेरे दे देना।"

इस टोक से चुन्नीलाल चिढ़ गया। बोला—"कल सुबेरे

नौकरी पे जाऊँगा कि चिट्ठी देने दो कोस छावनी जाऊँगा। तू सो जा, मैं अभी एक-डेढ़ घण्टे में आया।"

सीता ने फिर कुछ नहीं कहा, चुन्नीलाल चला गया।

दो-तीन दिन से चुन्नीलाल बराबर हार रहा था इस कारण और भी जोश में आकर दाँव लगाया करता। रामजी भाई का तो वह बिन खरीदा गुलाम हो गया था, उसकी 'हाँ' में 'हाँ' और उसकी 'ना' में 'ना' मिलाता। बजार में पहुँचते ही चुन्नीलाल रामजी भाई की दूकान पर पहुँचा--"जैराम जी की।" "जय महावीर जी की।" चन्दा बतलाये थी कि दुकान बन्द है, सो बड़ी फिकर हुई मेरे को कहीं तबियत तो खराब नहीं हो गई है।"

रामजी भाई के मन में चन्दा आग जला गई थी, जले स्वर में धीरे से बोला--"तेरी छोरी आँखें बन्द करके चले है बजार में।"

बड़ा कड़वा था यह स्वर, सुनकर चुन्नीलाल जरा सिटपिटा गया, खुशामदी लहज़े में बोला--"बच्ची है, आप दिखे नहीं होंगे भाइजी।"

रामजी भाई चिड़चिड़ाया--"बच्ची रह गई है अब भी वो।" लेकिन फिर रोक लिया अपने को, चन्दा के रुख ने इसकी बनी-बनाई स्कीम को मिट्टी में मिलाना चाहा था पर रामजी भाई भी कोई कच्ची गोलियाँ नहीं खेला था। रस्सी वहीं तक खींचता था जहाँ तक उसके टूटने का डर नहीं होता था। कुछ देर बाद कहा--"थोड़ी देर बाद आना, काम है तेरे से।"

चुन्नीलाल ने दाँत निपोर दिया--"अभी हुकुम करो भाइजी, आज तो मेरी जेब एकदम खाली है।"

रामजी भाई दूकान बन्द कर उठ खड़ा हुआ--"ठीक है। चल, चलते बातें होंगी।"

चुन्नीलाल वफादार कुत्ते की तरह उसके साथ हो लिया, जब दोनों 'बजार' से दूर निकल आये तब रामजी भाई बोला—"गणेशी के लिहाज के मारे अभी तक कुछ नहीं कहा पर कल तक, चुन्नीलाल तू मेरे रुपये चुका दे।"

चुन्नीलाल जैसे आसमान से गिरा, हकला कर बोला—"रु० रु०, रुपये। फिर गले का थूक सटक कर कहा—"सो तो दूँगा ही।"

रामजी भाई ने ठंडे लहज़े में कहा—"हाँ कल पहली है, एक किस्त दे दे।"

चुन्नीलाल के गले में फिर कुछ अटक गया—"कि-कितना।"

"तेरे पर एक सौ तो मूल के हैं और दस रुपये ब्याज के, तू कल मुझे पचास रुपये दे दे, बाकी फिर चुका देना।"

सुनकर चुन्नीलाल की छाती पर जैसे मनभर का पत्थर पड़ गया, पचास यानी पूरी तनखा, फिर सीता को क्या जवाब देगा। तनखा नहीं देने पर तो सारी पोल खुल जायेगी और इस भय के अनुभव से उसकी वाणी रुँध गई। रीती-रीती दृष्टि से वह रामजी भाई की ओर टुकुर-टुकर देखने लगा।

रामजी भाई पक्का व्यापारी था। चारा फेंक कर मछली फँसाने की कला वह माँ के पेट से ही सीख कर आया था और काँटा कंठ में उलझता भी इस तरह था कि एक तो निकले ही नहीं और यदि निकले भी, तो कंठ तो कंठ छाती तक चीर कर रख दे। चुन्नीलाल की रीती दृष्टि देख कर उसने फिर डंडा मारा—"दफ्तर से सीधा मेरी दूकान पर आना, समझा।"

"प....प....पर।"

"पर-वर अब गया भाया, या तो रुपये दे, या जो मैं कहूँ उसे मान।"

प्यास से निकल रहे प्राणों को जल की एक बूँद जैसे मिल गई। चातक की तरह मुँह फाड़ कर चुन्नी बोला—"हुकुम करो भाई जी!"

रामजी भाई एक पल के लिए रुका; फिर जैसे उसने पत्थर दे मारा—"अपनी उस घमंडी छोरी चन्दिया का मुँह तोड़ डाल।" फिर तीर की तेजी से चला गया।

बे-जान पैरों को घसीटता हुआ चुन्नीलाल घर के चबूतरे पर आ कर पड़ रहा। ऊपर स्वच्छ-निर्मल आकाश था; तारे टिम-टिमा रहे थे। पास ही किशन गहरी नींद में सोया हुआ था। रामजी भाई ने पचास रुपये माँगे थे और क्या कहा था उन्होंने, "चन्दा का मुँह तोड़ डाल।" क्या मतलब है इस बात का? आखिर क्यों कही उन्होंने यह बात। चन्दा ने जरूर शाम को कुछ कहा होगा, मुझसे आ कर झूठ बोल गई कि 'दूकान बन्द है।' जरूर, जरूर इसी ने किया है कुछ। वरना, रामजी भाई इस तरह गला दबानेवाला नहीं है। मन-ही-मन चुन्नीलाल को चन्दा पर बेहद क्रोध हो आया।

रात भर वह बेचैनी से नंगी जमीन पर करवटें बदलता रहा। पल भर भी उसकी आँखें नहीं झँपीं। पौ फटते ही उसने दरवाजा खटखटाया।

"खोलती हूँ बापू!"

अभी-अभी नहा कर आई चन्दा उसे देखते ही मुस्कराई, इस तरह कि चुन्नीलाल के सारे क्रोध पर पानी पड़ गया। चन्दा उसकी लाडली बेटी थी, किशन से एक बार वह कुछ कह सकता था; पर उससे नहीं। चुन्नीलाल के मुख पर फीकी-सी मुस्कराहट आ गई—"नहा लो बेटा! मेरा भी अँगौछा ले आ। नित-नेम से निपट आऊँ।"

अँगौछा ले कर चुन्नीलाल चल दिया। नदी के ठंढे पानी में नहा कर उसके रात भर के द्वन्द्व से थके मन-शरीर को थोड़ा चैन मिला। सूर्य की पहली किरण को अर्घ्य दे कर वह घर लौट आया। चबूतरे पर चढ़ते ही किशन से सामना हो गया— "ट्यूशन फी के दस रुपये चाहिए।"

चाह कर भी चुन्नीलाल के मुँह से 'ना' नहीं 'अच्छा' ही निकला; फिर वह पूजा के आसन पर जा कर बैठ गया।

किशन और चन्दा पढ़ने चले गये थे। नौ बजते-बजते चुन्नीलाल भी थाली पर आ बैठा। वह रोटी खा अवश्य रहा था पर वह बार-बार गले में अटक रही थी। पानी के घूँट से वह कौर पेट में उतारता जा रहा था। सीता ने इसे लक्ष्य किया तो पूछा—"जी ठीक नहीं हैं के ?"

चुन्नीलाल का मन कितना घबराया हुआ था, वही जानता था, सीता से कहने की बात नहीं थी। जो तूफान वह पैदा कर चुका था उसका प्रकाश अपने मुँह से करे यह हिम्मत सौ जन्मों में भी उसमें नहीं आ सकती थी। अतः कहा—"हाँ आज कुछ बुखार सो दीखे है। रोटी रहने दे, साम को खाऊँगा।" थाली खिसका कर वह उठ खड़ा हुआ और तैयार होकर नौकरी पर चल दिया।

दफ्तर में काम करनेवाले सारे ही कर्मचारी चुन्नीलाल के लिये 'साहब' थे और अपनी सिधाई व मेहनत के कारण चुन्नीलाल सभी का प्रिय चपरासी था। बाबू लोगों के पान बीड़ी ला देने से लेकर वह आफिस के जरूरी काम भी बड़ी मुस्तैदी से करता था, वही चुन्नीलाल आज पग-पग पर भूल कर रहा था।

बारह बजे की डाक से एक बड़ा जरूरी पत्र आया था। डिस्पैच क्लर्क मुकुट बिहारी ने चुन्नीलाल को बुलाकर कहा—"यह

'लेटर' बड़े साब को दे आ। बड़ा जरूरी है, सीधा दे आना और साब जैसा जवाब दे ले आना। मैं इन्तजार कर रहा हूँ।"

चुन्नीलाल ने पत्र लिया और बड़े साब के कमरे की ओर चल दिया, रास्ते में किसी 'बाबू' ने उससे पानी माँगा। पत्र मेज पर रख चुन्नीलाल पानी लेने चल दिया, इधर मुकुट बिहारी इन्तजार में बैठा रहा। पत्र 'आडिट' से सम्बन्धित था, बड़े साब को इस पत्र की आज उम्मीद भी थी। बहुत देर तक भी जब चुन्नीलाल नहीं लौटा तो वह स्वयं उठा, दरवाजे के बाहर किवाड़ से टिका न जाने किन विचारों में खोया चुन्नीलाल बीड़ी पी रहा था।

मुकुट बिहारी को जरा क्रोध आ गया--"लेटर कहाँ है वो जो बड़े साब को देने के लिये दिया था तुझे।"

पत्र की बात चुन्नीलाल के दिमाग से ऐसी उतरी कि फिर चढ़ी ही नहीं--"जी, मुझे, मुझे कब दिया।"

मुकुट बिहारी का पारा चढ़ गया--"तुझे नहीं तो और किसे दिया था। भाँग पीकर आया है क्या आज! जल्दी से पत्र ढूँढ़कर ला, समझा।"

मुकुट बिहारी लाल-पीला होता हुआ अपनी मेज पर लौट गया और चुन्नीलाल 'कौन-सा 'लेटर' सोचता हुआ अन्दर आया। पत्र की बात याद ही नहीं थी उसे, फाइल होती तो ढूँढ़ने से मिल भी जाती पर कागज का मिलना तो मुश्किल ही था। सभी से उसने पूछा, 'साब आपने देखा' पर कोई भी नहीं बता पाया। हारकर उसने मुकुट बिहारी से आकर कह दिया--"लेटर तो कहीं भी नहीं मिला साब, आपने दिया ही नहीं होगा।"

मुकुट बिहारी चिल्लाया--"दिया कैसे नहीं साब के बच्चे। खो दिया कहीं तो मुझी को झूठा बना रहा है?"

होते-होते बात बड़े साहब के कान तक भी पहुँची। चुन्नीलाल

के बदले उन्होंने मुकुट बिहारी को आड़े हाथों लिया—"अपनी गलती अपने मातहतों पर डालकर स्वयं की 'पोजीशन' सेफ कर लेना यह एक अच्छी कला है। हो सकता है पत्र खुद आपने ही कहीं रख दिया हो, जरा अच्छी तरह तलाश कीजिये।"

"जी, पर 'लेटर' मैंने चुन्नीलाल को ही दिया था।"

"चुन्नीलाल अपने काम को कितनी ईमानदारी से करता है, यह मैं ही नहीं आप भी जानते हैं। जाइये तलाश कीजिये।"

मुकुट बिहारी का मुँह उतर गया। गलती नहीं थी फिर भी डाँट खानी पड़ी। आग्नेय दृष्टि से चुन्नीलाल को घूरता हुआ चला गया। पत्र आखिर नहीं ही मिला।

तनखा बँटी, सब लोगों के जाने पर चुन्नीलाल आफिस बन्द करने लगा अचानक उसकी दृष्टि इसी बाबू की मेज के नीचे रखी रद्दी की टोकरी में गई जिसे उसने दिन में पानी पिलाया था। कोई लिफाफा पड़ा तो था उसमें, भरा हुआ-सा। उसने झुककर पत्र निकाल लिया, देखा तो चट याद आ गया कि यही पत्र उसे दिया गया था। मन-ही-मन उसने अपने को बहुत कोसा फिर चुपके से मुकुट बिहारी के टेबिल के ड्रार में वह लिफाफा रख दिया, यह सोचकर कि अपनी गलती वह स्वीकार नहीं करेगा। कल अपने ड्रार में पत्र पाकर 'साब' को सबके सामने अपनी ही गलती माननी पड़ेगी।

अपने चालीस साल के जीवन में यह पहला 'धोखा' किया उसने, तनखा लेकर वह चल दिया, घर जाने में रामजी भाई की दूकान बीच में पड़ती थी। चुन्नीलाल ने उसकी आँख बचानी चाही पर रामजी भाई ताक में था, देखते ही आवाज दी—"चुन्नीलाल!"

चुन्नीलाल को पास जाना पड़ा।

"रुपये लाया!"

चुन्नीलाल के हृदय की धड़कन रुकने-रुकने को हो गई। उसके ललाट पर पसीना छलक आया।

रामजी भाई ने चुन्नीलाल का खाता खोला—"ला, निकाल।"

चुन्नीलाल काँप गया।

"एक सौ दस की चूक या फिर मेरी बात। के मंजूर है!"

इस बार मशीन की तरह चुन्नीलाल का हाथ कोट के भीतर की जेब में गया। रुपये निकाल कर उसने गद्दी पर रख दिये, रामजी भाई की आशा को धक्का लगा। फिर भी रुपये माँगे थे, मिले सो उठाने पड़े। खाते का पन्ना चुन्नीलाल की ओर बढ़ाकर कहा—"मैं धोखे का काम नहीं करता, चुकाई की यहाँ सही कर दे।"

चुन्नीलाल ने पुतले की तरह कागज पर अँगूठा लगा दिया।

"अब साठ रह गये, दो महीने का ब्याज कुल सवा छह रुपये जोड़कर सवा छियासठ दो महीने के अन्दर-अन्दर चुका दीजो। अच्छा।"

सिर हिलाकर चुन्नीलाल चल दिया; सीधा घर नहीं गया, चौक के कुएँ की पाल पर बहुत देर तक बैठा रहा, उसके सोचने-समझने की सारी शक्ति नष्ट हो गई थी। घर पहुँचा तब तक रात हो चुकी थी।

किशन को चूँकि आज रुपये लेने थे इसलिये वह घर पर ही था, चुन्नीलाल के खाट पर बैठते ही बोला—"रुपये दो, मनोहर के चुकाने हैं।"

सीता भी बोली—"कल का राशन नहीं है, आये भी इत्ती देर से हो, अब कब नाज फटकूँगी पीसूँगी। किसना तू दौड़कर रासन तो लिया आया, नहीं दुकाना बन्द हो जावेगी। लाओ, रुपये दे दो।"

चुन्नीलाल ने सब सुना, सब समझा पर न तो कोई हरकत की न उत्तर ही दिया। सीता और किशन प्रतीक्षा करते रहे। देर होते देख सीता ने फिर कहा—"देते काहे नहीं हो, दुकान बन्द हो जायेंगी तो नाज कहाँ से आवेगा, कल खावेंगे कैसे सब ?"

चुन्नीलाल ने निगाह चुरा लीं, सच बात कहने की हिम्मत नहीं थी और कोई बहाना सूझ नहीं रहा था सो चुपका बैठा रहा। इतनी देर में उसकी बुद्धि जमी तो आँखें बिना मिलाये कहा—"रुपये तो किसी ने मार दिये।"

घर में जैसे बिजली गिर पड़ी, सीता और किशन उछल पड़े—"मार दिये।"

बहाना मिलते ही चुन्नीलाल का साहस लौट आया, बोला—"तलाब की पाल पे एक गुण्डे से आदमी ने धक्का दिया था मुझे, मैं जानूँ इसी नियत से धक्का लगाया होगा उसने, तीर की तरह भाग गया हरामी; नहीं गला दबोच देता वहीं।"

सुनकर सीता तो सुन्न रह गई पर किशन ताव खा गया—"तुम्हारी जेब काट ली ! इस शहर में इतना भी कलेजा है किसी का। सच बोल रहे हो ?"

"और नहीं तो झूठ कहा है के !" चुन्नीलाल को भी तैश आया।

"तो ठीक है। जिसने भी निकाले होंगे रुपये वह बच के नहीं जायेगा, एक नहीं, पाँच हैं हम, पाँच। 'पंचशील' जिन्हें शहरवाले 'गुण्डा' कहते हैं। हम 'गुण्डों' से ही 'गुण्डई' करेगा कोई !" कहकर किशन झपट कर बाहर चला गया।

चुन्नीलाल हाथ-मुँह धोने चल दिया और चन्दा उस सारे तूफान से बेखबर किरण और सुरेश के साथ 'रमी' खेल रही थी।

—:०:—

: ८ :

सीता ने ठीक कहा था। वास्तव में घर में अन्न का एक दाना भी नहीं था, पहली तारीख पर तनखा मिलेगी तो महीने भर का राशन मँगवा लेगी, यह सोच कर वह निश्चिन्त होकर बैठी थी। तनखा कम थी पर सीता किसी-न-किसी तरह खर्च निभा ही लेती थी, घर में बस एक किशन नवाब था पर उसकी नवाबी दोस्तों के बल पर चलती थी। सीता, चन्दा और चुन्नीलाल के दिन तो ऐसी फटेसली में बीतते थे, सीता ने कभी नई साड़ी नहीं पहनी थी, इतना दुख था पर यह दिन कभी नहीं आया था कि घर में चूल्हा न जले। महीने-के-महीने चुन्नीलाल सारी तनखा लाकर उसके हाथ पर बिना माँगे रख देता, पर इस बार तो फूटी कौड़ी न आई। सीता की आँखों से मारे दुख और क्रोध के आँसू झाँक रहे थे। पूरा महीना मुँह फाड़े सामने खड़ा था। कैसे काम चलेगा और सब जरूरतें रुक भी सकती हैं पर भूख तो नहीं कट सकती, पेट को तो ईंधन देना ही पड़ेगा, वह कहाँ से जुटेगा। सीता की छाती अन्दर-ही-अन्दर जैसे ऐंठ रही थी और चुन्नीलाल बाहर चबूतरे पर बैठा आने-जानेवाले को देख रहा था। पहले कभी झूठ नहीं बोला था, बहाने नहीं बनाये थे, पर जब से रामजी भाई के चंगुल में फँसा था वह सब चालाकियाँ सीखता जा रहा था।

बुढ़ापे में जब आदमी 'राम' से नेह लगाता है, उसने झूठ, फरेब और मक्कारी से लौ लगाई थी।

बैठे-बैठे ही सूरज सिर पर चढ़कर झाँकने लगा। नियम के विपरीत न चुन्नीलाल आज नहाया, न पूजा पर ही बैठा। घर में चूल्हा भी नहीं जला था। अतः वह दफ्तर का समय होता देख जैसे बैठा

था वैसे ही उठकर चल दिया। झाड़-पोंछ का काम उसने रोज की तरह ही किया और बाबू लोगों के आने पर बाहर जाकर बैठ गया। रोटी तो रोटी आज सबेरे से एक बीड़ी भी नहीं मिली थी। पैसे थे ही नहीं पास में कि बीड़ी खरीदता।

कितने ही बाबू लोग बीड़ी पीते आँखों के आगे से निकल गये, चुन्नीलाल का मन ललचा कर रह गया पर भीख माँगने का अभ्यास अभी पड़ा नहीं था इस कारण एकाएक बीड़ी माँगने का साहस नहीं हुआ। मन को सब्र की डोर में बाँध कर वह काम करता रहा पर आखिर सब्र ने उसका साथ छोड़ ही दिया, एक बाबू के पास जाकर आँखें झुका कर बोला—"एक बीड़ी होगी साब।"

बाबू ने मुस्करा कर उसे एक बीड़ी दे दी। चुन्नीलाल को जैसे कुबेर का धन मिल गया। उसके सूखे मुख पर चमक आ गई। उसी एक बीड़ी के सहारे उसने दिन निकाल दिया। आखिर शाम ढलते-ढलते मुकुट बिहारी ने उसे बुलाया।

"जी साब!"

कल का वही खोया हुआ पत्र उसके हाथ में था, चुन्नीलाल को पैनी दृष्टि से घूरकर बोला—,,यह लेटर यहाँ कैसे आया?"

चुन्नीलाल ने बड़ी सफाई से झूठ बोल दिया—"मुझे के मालूम साब।"

मुकुट बिहारी अच्छी तरह जानता था कि पत्र उसने चुन्नीलाल को दिया था और इसका भी उसे विश्वास था कि उसे ड्रार में भी चुन्नीलाल ने ही रखा होगा पर बिना प्रमाण के वह उसका करता भी क्या, दाँत पीस कर वह धीरे से गुर्राया—"देख लूँगा कभी।" फिर पत्र लेकर बड़े साब के पास चला गया।

और चुन्नीलाल ने सोचा—"चलो सस्ते छूटे।"

दफ्तर बन्द कर बाहर निकला तो दो कदम दूर ही गणेशी मिला—"हो गई छुट्टी।"

चुन्नीलाल उसे देखकर चकित स्वर में बोला—"हाँ, पर तू यहाँ के कर रहा है।"

"तेरा ही आसरा तके था, घर जायेगा न।"

"हाँ।"

"चल।" 'नवयुग टी स्टाल' पर आकर गणेशी रुक गया, बोला—"जरा ठहर। पहले एक पियाली चा पीले।"

उसका हाथ पकड़ कर गणेशी उसे अन्दर ले गया, छोकरे से उसने दो चाय और एक प्लेट पकौड़े मँगवाये। चाय आने पर बोला—"खा!"

चुन्नीलाल सबेरे से भूखा था। यों भी पहले की शर्म उसकी कभी की मर चुकी थी सो गणेशी के एक बार कहने पर ही उसने खाना शुरू कर दिया। गणेशी ने साथ भर दिया। प्लेट भरे पकौड़े चुन्नीलाल ने ही साफ किये। चाय पीकर उसके शरीर में जान आ गई। गणेशी ने देखा तो जरा दुखी हुआ। रामजी भाई से यह जान कर कि कर्ज पर चुन्नीलाल ने पचास रुपये जमा किये हैं वह सब समझ गया था; चुन्नीलाल को यह रास्ता गणेशी ने ही बताया था। रुपये की खनक उसी ने उसके कानों में बजाई थी। लेकिन उसे गढ़े तक खींचने का पाप करने पर भी वह कमीना नहीं था। इसी कारण कब से उसके आफिस के आगे खड़ा उसकी राह देख रहा था। चुन्नीलाल खा चुका तो उसने पैसे चुकाये फिर उठ खड़ा हुआ। चलते-चलते गणेशी बोला—"यार ये रामजी भाई बड़ा कमीना निकला।"

चुन्नीलाल समझ गया, गणेशी क्यों रामजी भाई को कमीना कह रहा था, बोला—"कमीनेपन की के बात है। उसके रुपये थे, लेगा काहे नहीं।"

"ठीक है लेगा, पर करज पेटे कोई सारी तनखा नहीं लेता। यह तो सरासर जुलम है, आखिर उसके भी औरत हैं, बच्चे हैं, इत्ता नहीं सोचा उसने कि सारी तनखा ले लेने पर ये कोई के खावेगा ?"

चुन्नीलाल गणेशी को क्रोधित देख उसे ठंडा करने के लिये बोला—"सीता लहठमी है, सब कर लेगी ?" पर बिना पैसे के 'लहठमी' क्या कर लेगी वही जाने।

चलते-चलते दोनों रामपुरा दरवाजे तक आ पहुँचे थे, गणेशी का घर बुर्ज के पीछे ही था, सो वह रुक गया, बोला—"मुझे बड़ा दुख लगा चुन्नी। तेरी इस बरबादी को मैंने ही नेवता दिया था पर मुझे के मालूम था भाया कि तू ऐसे घर फूंक के खेलेगा। खैर जो हुआ, पर अब तू मत खेलना।"

एक सीधे लड़के की तरह चुन्नीलाल ने बात मान ली—"नहीं खेलूँगा।"

गणेशी ने कमीज की जेब से पाँच रुपये का एक नोट निकाल चुन्नीलाल के हाथ पर रख दिया, कोमल कंठ से कहा—"मना मत करना चुन्नी, राशन लेते हुए घर जाना, अच्छा! और चुन्नीलाल के उत्तर की राह देखे बिना घर की तरफ चला गया, चुन्नीलाल, जब तक वह दिखाई दिया, वहीं खड़ा रहा, ओझल होने पर एक गहरी साँस ले वह भी आगे तक बढ़ गया।

घर की ओर ही रुख था उसका, पर अपने सुस्त मन की न जाने किस क्रिया के कारण वह गोवर्धन की दुकान पर पहुँच गया। गोवर्धन का धन्धा था दलाल का, भाव की घट-बढ़ की, प्रतिदिन की रिपोर्ट वह जुआरियों को देता और हिसाब के अनुसार अपना कमीशन ले, हट जाता।

आज के भाव पर आखिरी सौदा करनेवाला भज्जू था।

"के बात है चुन्नीलाल ? वड़ा थका-थका दीखे रे।" भज्जू रुपये जमा कर चुका था, चुन्वीलाल को देखकर वह जाते-जाते रुक गया।

"थका के दादा, सीधा नौकरी से आ रहा है। किस भाव की आसा है आज।"

गोवर्धन ने उत्तर दिया--"दो रुपये तोले पर कल का बजार बन्द हुआ था, आज किस पर होगा राम जाने।"

"तूने किस पर लगाया भज्जू।"

"वही दो रुपये पर।"

"तो गोरधन मेरे भी ये पाँच दो के भाव ही माँड ले। गणेशी के दिये नोट को चुन्नीलाल ने गोवर्धन की ओर फेंक दिया।

"अच्छा।"

रुपये ज़मा कर गोवर्धन ने रजिस्टर चुन्नीलाल की ओर बढ़ा दिया। गणेशी की सद्‌भावना का यह उपयोग किया था उसने। घर में अन्न नहीं था, सवेरे से वह भी भूखा ही था पर अन्न खरीदवे के स्थान पर उसने खेला दाँव। चुन्नीलाल अब उस ढलान पर उतर चुका था जहाँ से आने का कोई रास्ता ही नहीं था। मन की रंगीन आशा से उसने फिर दाँव लगा दिया।

'घर में रोटी तो मिलेगी नहीं, जल्दी के करूँगा', सोचकर वह वापस पब्लिक पार्क की ओर चल दिया। वह एक अकेले कोने में जाकर दून पर लेट गया।

दो महीने नहीं, दो युग निकल गये थे जैसे। सैकड़ों रुपये चुन्नीलाल के हाथ में आये और निकल गये। कर्जा लेकर उसने वारा-न्यारा करना सीखा था सो वह कर्ज अब भी गले से नहीं उतरा था। जिस दिन जीता, चेहरा गुलाब का फूल बन गया, हारा तो कालिख पुत गई। पता नहीं वह कैसी तकदीर लेकर इस

पृथ्वी पर आया है। गणेशी रोज खेलता है पर बेटा किसी का कर्जदार नहीं है।"

आसमान में बादल के टुकड़े थे। हवा भी घुटी-घुटी-सी थी। लगता था आज पानी बरसेगा। चुन्नीलाल को कुछ ठंडक-सी महसूस हुई तो उठ बैठा। अपना साफा ठीक कर पास ही बैठे सज्जन से पूछा--"कित्ता टेम हुआ साब।"

"सवा नौ बज रहे हैं।"

चुन्नीलाल उठ खड़ा हुआ। एक अँगड़ाई ली और चल दिया। घर जाकर गोवर्धन की दूकान पर जा बैठा। उसे बैठे हुए दस-पन्द्रह मिनट भी नहीं हुए होंगे कि कालदूत की तरह किशन आ धमका--"घर चलो।"

चुन्नीलाल मुँह फिरा कर बोला--"तू जा, मैं थोड़ी देर में आता हूँ।'

किशन यों ही क्रोध में था, इस इन्कार पर तो उसे इतना गुस्सा आया कि बाल पकड़ कर चुन्नीलाल को घसीटता हुआ ले जाये; पर भरे बाजार में अपनी ही पगड़ी उछालने में कौन-सी बुद्धिमानी थी, सो क्रोध को किसी तरह पीकर कहा--"देर-वेर नहीं, अभी चलो।"

किशन से चुन्नीलाल बड़ा घबराता था। अतः आगे कोई भी हीला-हवाला न कर उठ खड़ा हुआ। गोवर्धन की ओर एक मतलब भरी दृष्टि फेंककर वह किशन के साथ चल दिया। रास्ते में किशन ने एक शब्द नहीं कहा, घर आते ही उसने खीझकर चुन्नीलाल को चबूतरे पर चढ़ाया फिर एक तरह से घसीटता हुआ घर में ले गया। इतनी देर से क्रोध पी रहा था वह। अन्दर आते ही उसने चुन्नीलाल को ढकेल दिया। चुन्नीलाल दुबला-पतला मरियल-सा

मनुष्य था और किशन था अखाड़ेबाज, उसका धक्का खाकर चुन्नीलाल दीवार से जा टिका।

सीता और चन्दा स्तब्ध रह गयीं। किशन माँ-बाप का आदर नहीं करता पर इसीलिए वह बाप को धक्के दे, यह उनकी कल्पना से परे की बात थी।

किशन की आँखों में लाल-लाल डोरे खिच गये थे। उसके नथुने मारे क्रोध के फूल रहे थे, चुन्नीलाल की ओर घूरता हुआ वह गुर्राया--"अब बताओ किसने काटी थी जेब तुम्हारी?"

उत्तर में चुन्नीलाल भी गुर्राया--"कहा न बाग में काट दी किसी ने।"

किशन दाँत पीसता हुआ बोला—"वाग में काट ली? मसान (श्मशान) में लटके हो पर झूठ बोलते शर्म नहीं आती?

चुन्नीलाल जरा सहमा, कहा—"के मतलब?"

"मतलब मुझसे ज्यादा अच्छी तरह तुम जानते हो। तुमने सोचा होगा, माँ को जिस तरह बेवकूफ बना गये मुझे भी उसी तरह बना लोगे पर तुम्हारे जैसे बहुत चराये हैं मैंने। उगल दो अव तुम खुद ही कि रुपयों का तुमने क्या किया वरना आज हत्या हो जायेगी।"

किशन का रौद्ररूप देखकर सीता गिड़गिड़ा कर बोली—"भायारे, किसना, जाने दे बेटा!"

किशन का शरीर मारे क्रोध के काँप रहा था, गरज कर बोला—"जाने दूँ कैसे। सट्टे के चरके में रामजी भाई के कर्जदार बने, रुपये सारे उस कमीने को सौंप दिये और घर में आकर कह दिया जेब कट गई?" फिर अपनी छाती ठोंककर बोला—"यहाँ के गुण्डे थर्राते हैं मेरे नाम से, समझे बापू। तुम्हारी जेब काट ले कोई, किसी की इत्ती मजाल? बोलो, किसे दिये रुपये।"

पोल खुल गई थी, मन-ही-मन चुन्नीलाल कांप गया पर मुंह से फिर भी सच बात उसने नहीं कही—"नहीं दिये किसी को।"

अब किशन संतुलन खो बैठा—"फिर झूठ ? कहते हुए उसने उछल कर चुन्नीलाल की गरदन पकड़ ली। चून्नीलाल घायल बैल की तरह हँकाने लगा। सीता के हाथ-पैर फूल गये, वह किशन के हाथ जोड़ने लगी—"भायारे, छोड़ दे रे।"

चन्दा रोती हुई ऊपर भागी, सुरेश देखकर चौंक पड़ा—"क्या हुआ रे !"

"बचाओ, बचाओ सुरेश दादा, मेरा दादा बापू को मार डालेगा, जल्दी चलो।"

"ऐसा !" सुनते ही सुरेश, किरण और शर्मा दम्पत्ति भी भागे।

किशन चुन्नीलाल का गला दबा रहा था। सीता रोती हुई बोली—"अरे छोड़ दे रे कसाई। तुझ जैसे पूत से तो निपूते अच्छे, छोड़ दे हत्यारे।"

"बोलो।" किशन चीख रहा था।

"हाँ हाँ दिये। दिये !" पीड़ा के मारे दोहरा होता हुआ चुन्नीलाल बोला।

तभी सुरेश आ पहुँचा। किशन से वह यों भी प्रसन्न नहीं था, आज का उसका व्यवहार देखकर वह क्रुद्ध हो आश्चर्य से बोला—"बाप पर हाथ उठाते शर्म नहीं आई किशन !"

किशन सुरेश का आदर करता तो था, उम्र, शिक्षा, बुद्धि सभी में वह उससे अधिक था इस कारण हो अथवा किसी और कारण से हो पर उससे उसने कभी जबान नहीं लड़ाई थी। लेकिन आज उसके मन में आग जल रही थी। गुर्राकर बोला—"शर्म आये न आये पर आप बीच में बोलनेवाले कौन होते हैं।"

सुरेश क्रुद्ध स्वर में बोला—"सब कुछ होता हूँ, यह मकान मेरा है। मेरे मकान में इस तरह की गुण्डागिर्दी नहीं चलेगी, समझा तू।"

किशन ताव खाकर बोला—"पैसा देते हैं तब रहते हैं। कोई फोकट में नहीं रख रखा है तूने जो आँखें दिखा रहा है।"

"गुण्डे, आवारा, तेरी इतनी हिम्मत।" सुरेश आपा भूल गया। आग बबूला होकर उसने 'तड़' से एक थप्पड़ किशन के मुँह पर जमा दिया। किशन ने आज तक किसी की बात नहीं सही थी, ईंट का जवाब पत्थर से देना ही उसका स्वभाव था, उसी किशन के मुँह पर थप्पड़ मार दिया सुरेश ने ! इस कांड से सब एक बार तो हत्बुद्धि रह गये और भयभीत दृष्टि से किशन की ओर देखने लगे।

चन्दा थर-थर काँपने लगी।

किशन के सिर पर खून चढ़ आया। पास ही कोने में रखा अपना मुग्दर उसने हाथ में उठा लिया।

"दादा।" चन्दा उसके पैर से लिपट गई पर किशन एक झटके से आगे बढ़ा, मुग्दर सिर के ऊपर घुमाकर उसने सुरेश के सिर पर वार किया पर तभी चन्दा बीच में आ गई, 'खट्' का स्वर हुआ। चन्दा का सिर खुल गया, खून का फव्वारा छूट गया।

चेतनाहीन चन्दा सुरेश की बाहों में झूल गई। सिवा सुरेश के जो अपनी रक्षिका के मुँह को एकटक पथराई दृष्टि से देख रहा था सब 'हाय हाय' कर उठे। किशन हक्का-बक्का रह गया। मुग्दर उसके हाथ से छूटकर जमीन पर जा गिरा, फटी-फटी आँखों से वह खून में नहाई चन्दा को देखने लगा, उसे जैसे चेतना नहीं रही थी।

"हाय रे हत्यारे, छोरी को मार डाला रे तूने कसाई।" सीता घायल पक्षी की तरह तड़पने लगी।

और किशन को जैसे होश आ गया। झपट कर उसने सुरेश के हाथों से चन्दा को छीन लिया, फिर उसके खून से लथपथ मुख पर मुख रखकर वह बुक्का फाड़कर रो पड़ा—"हाय रे चन्दा, यह मैंने क्या किया।"

सुरेश की हालत उस मनुष्य के जैसी हो रही थी जो जलती आग में विवश निरुपाय-सा जलता रहता है पर जिसके शरीर में वहाँ से निकल भागने की शक्ति भी नहीं रहती। चन्दा के सिर से बहते खून ने उसकी छाती पर आग की लकीर जैसे खींच दी थी पर वह पत्थर की मूर्ति की तरह उसे देख रहा था, जलती लकीर ने मन, प्राण झुलसा कर रख दिये थे।

किरण की आँखों से ढर-ढर आँसू गिर रहे थे। शर्माजी घबराकर बोले—"अब देख क्या रहा है सुरेश, दौड़कर ताँगा ले आ। खून बहुत निकल रहा है। कहीं लड़की की जान पर न आ बने।"

सुरेश तीर की तरह ताँगा लेने भागा—सीता बिलख रही थी; पर जिसके पीछे यह सारा कांड हो गया था वह चुन्नीलाल एक तमाशाई की तरह इसे देख रहा था। उसका सारा ध्यान 'बाजार' में था। घड़ी डेढ़ेक के बाद भाव खुल जायेगा, हनुमानजी किरपा करें। आज जो दो का भाव खुल गया, तो भाइजो का सारा कर्ज उतार कर उसके मुँह पर थूक दूँगा।

सुरेश ताँगा ले आया। दो मिनट पहले का गुस्सा भूलकर किशन से बोला—"जल्दी उठा। अस्पताल पहुँचते-पहुँचते न जाने क्या हाल होगा इसका।"

किशन चन्दा को गोद में लेकर ताँगे में आ बैठा, सारे रास्ते भर वह रोता रहा। सुरेश ने शान्ति से कारण पूछा तो बोला—"बापू सट्टा करते हैं, यह बात उन्होंने आज तक नहीं बताई थी। कल सारी तनखा उस रामजी भाई का कर्ज चुकाने में दे दी और

हमसे कह दिया कि किसी ने जेब काट ली, मैंने असली बात मालूम कर ली पर बापू फिर भी सच नहीं बोले तो मुझे गुस्सा आ गया।" फिर सुबकते हुए कहा—"आप बीच में न बोलते तो आज चन्दा की क्यों हत्या होती मेरे हाथों, हे भगवान्।"

सुरेश कोमल स्वर में उसे सान्त्वना देता हुआ बोला—"रोने से क्या होगा किशन! जो होना था हो गया। हम लोगों का स्नेह सच्चा होगा तो चन्दा मौत के मुँह में से भी वापस लौट आयेगी।"

केस सीरियस था। डॉक्टरों ने उसी समय चन्दा को 'एडमिट' किया। आपरेशन रूम के दरवाजे पर बैठे सुरेश और किशन का हृदय भय के मारे धड़क रहा था।

नर्स आई—"किसका पेशेन्ट है?"

किशन ने सुरेश की ओर देखा। सुरेश किशन की ओर देखता हुआ बोला—"मेरा है।"

"अन्दर चलिये।"

किशन का हाथ अपने पसीने में भींगे, थर-थर काँपते हाथ से दबा कर सुरेश नर्स के साथ आपरेशनरूम में चला गया। डॉक्टर उसे देखते ही बोला—"यू आर लकी मिस्टर, हड्डी बच गई है पर खून बहुत निकल चुका है। खून देना पड़ेगा।"

सुरेश ने अपनी बाँह आगे बढ़ा दी—"ले लीजिये।" खून क्या, प्राण भी यदि कोई चन्दा के लिये माँगता तो क्या सुरेश इन्कार करता?

"वन मिनिट।" डाक्टर ने चन्दा के शरीर से एक बूँद खून लिया फिर सुरेश के शरीर से एक बूँद खून लेकर दोनों बूँदों को अलग-अलग टेस्ट टयूबों में डाल दिया, पाँच मिनट बाद परीक्षण कर कहा—"इट्ज ओ० के० आपका खून इनके खून से मेल खा गया है। यह क्या आपकी 'वाइफ' है।"

वाइफ! सुरेश का मुँह सिन्दूर की तरह लाल हो गया, मुख फिरा कर बोला—"जी नहीं!"

डॉक्टर ने इस तरह हँस कर "ओ० के०, ओ० के०" कहा मानो वह सब कुछ समझ गया हो और सुरेश ने यह सोच कर कि डॉक्टर ने क्या सोचा है मन-ही-मन उसे सैकड़ों गालियाँ दे डालीं। नर्स ने सुरेश को चन्दा के पास के बेड पर सुला दिया। डॉक्टर ने उसके हाथ की नस से एक टयूब फिट की और चन्दा की नस से उस टयूब को मिला दिया।

सुरेश के शरीर का खून खिचकर चन्दा के शरीर में जाने लगा। सुरेश की आँखें बन्द थीं, खून खिच रहा था शरीर से और हृदय चन्दा के इस त्याग पर स्नेह, कृतज्ञता और प्रेम से लबालब भरता जा रहा था। सभी तो थे वहाँ फिर वही क्यों बीच में आई। काश उसके इस बलिदान का वह कभी ऋण चुका सके।

"दैट्स आल मिस्टर।"

"एँ।" सुरेश ने चौंक कर आँखें खोल दी फिर उठ बैठा।

डॉक्टर मुस्कराया—"अब डर नहीं है, हम कल ही आपकी 'पेशेन्ट' को 'डिस्चार्ज' कर देंगे, आप जायें जरा 'रेस्ट' लीजियेगा और टॉनिक खाइये। जितना खून निकला है उतना वापस बनना भी तो है।"

कृतज्ञतापूर्वक डॉक्टर से हाथ मिला, चन्दा की ओर देखता हुआ सुरेश बाहर निकल गया।

किशन अधीर होकर बाहर चक्कर काट रहा था। सुरेश को देखते ही दौड़ा आया। रो-रो कर सुर्ख हो गयी आँखों से उसकी ओर देखता हुआ बोला—"इतनी देर कैसे लगी सुरेश दादा?"

"खून देना पड़ा किशन।"

किशन स्तब्ध होकर बोला—"आपने दिया खून।"

मन्द मधुर स्वर में सुरेश ने उत्तर दिया—"मेरे ही लिये तो खून बहा था किशन; पर भाई अब ठहर मत, मुझे बड़ी कमजोरी महसूस हो रही है। ताँगेवाले को यहीं ले आ।"

किशन ने ताँगेवाले को रोक रखा था। जाकर उसे ले आया। दोनों के बैठ जाने पर ताँगा चल पड़ा। रास्ते में किशन हाथ जोड़कर भर्राये कंठ से बोला—"जो कर बैठा हूँ उसे लौटा तो सकता नहीं, अच्छा ही हुआ कि चन्दा ने लाज रख ली। फिर अपने आज के व्यवहार की मैं आपसे माफी माँगता हूँ।"

कैसी आश्चर्यजनक थी यह बात, किशन और माफी, सुरेश चकित होकर उसकी ओर देखता रह गया, किशन मुख फिराकर अन्धकार में देखने लगा, धीरे-धीरे चल रहा था घोड़ा, बाग की ठंडी-ठंडी हवा से दोनों के मन की पीड़ा कम हो गई। सुरेश को कमजोरी भी महसूस हो रही थी और आत्म सुख से भी उसका हृदय भरा हुआ था। चन्दा आज जिस तरह उसके मन के चारों कोनों को जकड़ कर बैठ गई थी, उससे क्या कभी भी वह निवृत्ति पा सकेगा ?

"घर आ गया, उतरो सुरेश दादा।"

अपने सहारे से किशन सुरेश को ऊपर तक छोड़ आया फिर आकर चबूतरे पर लेट गया। सीता पानी से निकली मछली की तरह तड़प रही थी। किशन को देख बाहर आई रोकर बोली—"कैसी है मेरी चन्दा।"

"ठीक है, सुरेश दादा ने अपना खून दिया है। कल आ जायेगी।" कह कर वह खाट पर लेट गया फिर करवट बदल ली।

आँसू पोंछती हुई सीता अन्दर चली गई।

और उधर इस कांड का 'हीरो' चुन्नीलाल गोवर्धन की दूकान

पर बैठा बीड़ी फूँक रहा था। गणेशी उसे देख कर चौंक पड़ा—"तू।"

चुन्नीलाल की शर्म-हया बची कहाँ थी जो गणेशी को देख कर वह लज्जित होता। ढीठ की तरह मुस्करा कर बोला—"भाग कब जागेगा ये किसी को मालूम थोड़े ही पड़े है गणेशी! सोचूँ एक दिन भूखे रहने से मौत तो आयेगी नहीं, हाँ, यदि नहीं लगावे से कभी अपना सोचा भाव खुल गया तो अफसोस रह जायेगा। तू तो तकदीर का सिकन्दर है यार। तेरा पैसा कुछ-न-कुछ कमाल तो दिखायेगा ही।"

गणेशी ने सिर ठोंक लिया, जो सोचकर पाँच रुपये दिये थे उसका उल्टा हो गया, पछताते हुए बोला—"मेरा दिमाग ही फिर गया रे चुन्नी, जो नाज घर पर न पटकवाकर रुपये तुझ सटोरिये को पकड़ा दिये।"

लंगोटिया यार थे गणेशी और चुन्नी। सुख-दुख में हमेशा ही एक दूसरे के काम आये थे। जमाना था एक जब यदि चुन्नी ने आम तोड़ा तो गणेशी ने खाया था और गणेशी ने काटा तो चुन्नी ने पाया था। अब इतना नहीं निभ पाता था फिर भी दोनों के मन का प्रेम कम नहीं हुआ था। पर अपनी जेब काट कर दिये रुपये का यह दुरुपयोग देख गणेशी को क्रोध आया। वहीं अपने लिये 'सटोरिया' विशेषण सुन चुन्नीलाल की आँखों में खून उतर आया, दहाड़ कर बोला—"के! सटोरिया होगा तू और तेरा बाप, समझा।"

गणेशी पहले तो चौंका फिर होश में आ गया—"तेरी माँ की....बाप तक जाता है? नाड़की (गरदन) मरोड़ दूँगा।"

"तू मरोड़ेगा नाड़की? शरीर पे हाथ लगाकर देख बेटा। पुरखे न तिर आवें डियों (आँखों) में तो चुन्नीलाल को अपने बाप की नहीं भंगी की औलाद कहियो।"

अब तो गणेशी को बुरी तरह क्रोध आ गया। कुरते की आस्तीन ऊपर चढ़ाता हुआ गुर्राया—"सासे तरह देता हूँ तो सिर पर चढ़े जात हैं, होता बाप की औलाद तो आँख की शरम रखता। साला सटोरिया।" कह कर वह झपटा, फिर क्या था, दोनों बुरी तरह एक दूसरे से गुँथ गये। दोनों में से एक भी कम नहीं पड़ा, इतनी देर से जो लोग उनकी लड़ाई का आनन्द उठा रहे थे, अब बीच-बचाव करने के लिये दौड़े। बड़ी मुश्किल से दोनों को खींच-खाँच कर अलग किया। चुन्नीलाल की नाक से खून टपकने लगा था, गणेशी का निचला ओठ चिर गया था, दोनों एक-दूसरे को इतनी गंदी-गंदी गालियाँ निकाल रहे थे कि सुनने में भी शर्म आ जाये।

आखिर गणेशी तो कुरते की बाँह से मुँह का खून पोंछता हुआ घर चल दिया पर चुन्नी गोवर्धन की दूकान पर जा बैठा। इतने वर्षों की दोस्ती आज दुश्मनी में बदल गई। चुन्नीलाल ने शायद ही कभी यह सोचा होगा कि एक दिन वह और गणेशी कुत्तों की तरह लड़ भी सकते हैं, शर्म उसकी मर ही गई थी। कोमल भावनायें समाप्त होती जा रही थीं, तभी तो स्नेह की डोर के यों टूट जाने पर भी उसके मन में चोट नहीं पहुँची थी। वह बार-बार बड़बड़ा रहा था—"साला, हरामी, अपने को राजा समझता है कहीं का।"

ठीक बारह बजे की पहली टंकार के साथ फोन की घंटी बजी। 'बजार' के लोग मधुमक्खियों के झुंड की तरह गोवर्धन के चारों ओर इकट्ठे हो गये थे। चुन्नीलाल साँस रोककर बैठा रहा। पाँच के पचास आज जरूर बनेंगे उस साले हरामी की औलाद गणेशी के पाँच रुपये अभी जाकर उसके मुँह पर दे मारेगा।

"पौने दो, पौने दो।"

बाजार में भगदड़ मच गई और चुन्नीलाल की आशा का महल भरभरा कर गिर पड़ा। तकदीर वाले के रुपये से खेलने पर भी उसकी तकदीर नहीं बनी। भूखे-प्यासे शरीर को बड़ा गहरा धक्का लगा। उसे चक्कर आ गया। शराब की तरह जुआ उसके मन शरीर को चूसता जा रहा था। निराश, थके कदमों से वह आगे बढ़ा।

"मैंने कहा चुन्नीलाल है के।"

चुन्नीलाल की आँखों में डूब रहे मनुष्य की-सी आर्त्तता का भाव था पर रामजी भाई इस भाव का अभ्यस्त था। अपने कर्जदारों से वह जब भी मिलता है, उसको आँखों में सदा यही भाव झलकता रहता है। उस भाव में यदि वह मन कोमल बनाने लगे फिर तो हो चुका सूदखोरी का व्यापार।

"घर जा रहा है ?"

"हूँ।"

"बाकी के रुपये चुकाने की याद रखियो।"

सिर हिलाकर चुन्नीलाल ने "हाँ" भरी; फिर आगे बढ़ा।

रामजी भाई उसके साथ-साथ चलता हुआ बोला—"कहाँ से लायेगा ?"

"तनखा से दूँगा भाइजी।"

रामजी भाई के मुँह पर कुटिलता से भरी मुस्कान छा गई, बोला—"इस महीने की पूरी तनखा ता मेरे पास आ गई। अब महीने भर के खावेगा ?"

चुन्नीलाल विह्वल दृष्टि से रामजी भाई की ओर देखने लगा।

रामजी भाई ने अवसर देखकर कहा—"देख चुन्नी, मैं भला आदमी हूँ, जान-बूझकर किसी को नहीं सताता। तू यदि यह चाहे

कि मैं तेरे रुपये वापस कर दूँ और तेरा सारा करजा माफ कर दूँ तो एक इलाज है। राजी हो तो कहूँ।"

चुन्नीलाल का पेट भूख से और मन हार के दुःख से निष्प्राण-सा हो गया था। मनुष्य जीवन में भूख से जितना हारता है, मन के दुःख से उतना नहीं हारता। रुपये के बिना रोटी नहीं जुटेगी। रामजी भाई की बात पर राजी होना यदि असंभव नहीं हुआ तो वह जरूर हो जायेगा। चुन्नीलाल अपने पपड़ी जमे ओठों पर जबान फेरता हुआ धीरे से बोला—"आप हुकुम करो।"

रामजी भाई ऊपर टिमटिमाते तारों को देखता हुआ बोला—"भगवान् साक्षी रहे। यदि तू चन्दा को मेरे घर बिठा दे तो मैं इसी वखत तेरा सारा रुपया वापस कर दूँगा, करजा माफ कर दूँगा और चन्दा को बीस तोले जेवर दूँगा।"

चुन्नीलाल की आँखों के आगे जैसे ज्वालामुखी फट पड़ा। अभी तक कोई बात ठीक से समझ में नहीं आ पाई थी। उसकी बुद्धि के बन्द किवाड़ों को रामजी भाई ने अपनी बात के धक्के से खोल दिया। ज्वालामुखी के फटने पर जैसे पृथ्वी हिल उठती है, रामजी भाई की बात से चुन्नीलाल भी उसी तरह हिल उठा, आँखें फाड़कर बोला—"के मतलब ?"

"मतलब साफ है, या तो भूखा मर या चन्दा मुझे सौंप दे। सोच ले, जो ठीक समझे करियो।" कहकर वह चल दिया।

चुन्नीलाल फटी-फटी आँखों से अन्धकार की परतों में प्रतिक्षण छिपी जा रही रामजी भाई की कुरूप, थुलथुल देह देखने लगा।

—:o:—

: ९ :

रक्तदान के कारण सुरेश के शरीर में कमजोरी आ गई थी, लेकिन उसकी उपेक्षा कर वह किशन के साथ चन्दा को लेने अस्पताल गया। जिस डॉक्टर ने चन्दा का केस सम्हाला था, वह सुरेश को देखते ही मुस्करा उठा—"सो यू आर अगेन हियर। आई सी, यू हैव नाट ईवन केयर्ड फार योर वीकनेस टू० ओ० के, ओ० के मैन।" फिर हँसकर किशन और सुरेश को साथ लेकर चन्दा के 'बेड' के पास गया।

एकदम पीला पड़ गया था चन्दा का गोरा-गोरा मुख, रक्त की एक बूँद भी जैसे शरीर में नहीं रह गई थी, लेकिन बावजूद कमजोरी के वह बेड पर बैठी थी। सुरेश और किशन को देखते ही उसके पीले मुख पर चमक आ गई। मुस्कराते नेत्रों से वह देखने लगी।

चन्दा का मुख देखकर, किशन की छाती में जैसे छुरियाँ छिद गयीं। क्रोध और आवेश में आकर यह क्या उसने कर डाला था। यदि सिर फट जाता और....और—लेकिन इसके आगे की कल्पना उससे सहन नहीं हुई, दौड़कर वह चन्दा के पास पहुँचा, एक छोटे बच्चे की तरह उसके चारों ओर अपनी बाहें कसकर रो दिया।

चन्दा के मुख की चमक फिर खो गई, विह्वल होकर बोली—"रो मत दादा, रो मत, मुझसे सहा नहीं जाता।" कहते-कहते वह भी रो पड़ी। भाई-बहन के अपूर्व स्नेह का यह एक नया उदाहरण सुरेश को मिला। सदा के हठी, क्रोधी और 'गुण्डे' किशन का यह स्वरूप कितना निर्मल, कितना सौम्य था। कदाचित् चन्दा के रक्त ने उसके मन की गति बदल दी थी। वह चुपचाप देखता रहा, सांत्वना के दो बोल भी उसके मुँह से नहीं निकले।

डॉक्टर सिर हिलाकर बार-बार कह रहा था—"सो, सो, ह्वाट इज दिस। ह्वाई दे आर क्राइंग? बी करेजियस मैन, बी करेजियस।" उस बेचारे को यह व्यापार समझ में ही नहीं आता था।

फिर; आवश्यक कार्यवाही करके सुरेश और किशन चन्दा को लेकर लौट आये। रास्ते में किशन ने चन्दा से कहा—"मैंने तो तुझे मार डाला था पर सुरेश दादा ने अपना खून देकर तुझे जिला लिया। तुझे इन्होंने नई जिन्दगी दी है चन्दा।"

सुनकर चन्दा ने सुरेश की ओर देखा और सुरेश उसकी दृष्टि को देखकर विचलित हो उठा। कितना प्यार, कितनी श्रद्धा और कितने गहरे समर्पण का भाव था चन्दा की उस पल भर की दृष्टि में, सुरेश की छाती जोर-जोर से धड़कने लगी। "नहीं-नहीं चन्दा सच में अब बच्ची नहीं रह गई है।" सुरेश का शरीर झन-झना उठा।

किरण, सीता, किरण की माँ, सभी चन्दा की प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ी थीं। दस बजे के लगभग सुरेश, किशन और चन्दा घर पहुँचे। चन्दा का पूरा सिर मोटी-मोटी पट्टियों में लिपटा हुआ था। किशन उसे गोद में उठाये हुए था। चन्दा का मुँह देखकर किरण को रोना आ गया और सीता तो इस तरह उससे लिपट कर रोवे लगी कि किशन तो किशन, सुरेश तक की आँखें छलछला आयीं। किसी तरह सीता को समझा-बुझाकर उसने चन्दा को उसके बन्धन से छुड़ाया, फिर किशन ने उसे बिस्तर पर ले जाकर लिटा दिया; सीता से कहा—"इसके लिये थोड़ा गरम दूध ले आ। दूध और फल के सिवा कुछ भी देने को डाक्टर ने मना किया है।"

सुनकर सीता का मुँह सूख गया। दूध! अन्न जुटाने के लिये तो पैसे थे नहीं घर में, दूध कहाँ से लाती वह। विवश दृष्टि से

किशन की ओर देखने लगी और उस दृष्टि का मतलब समझ कर किशन के मन ने एक नई करवट ली। बाप सटोरिया था और वह रईस। क्लर्की करना वह अपनी बेइज्जती मानता था। वह अफसर बनना चाहता था, नौकरी वह ठुकरा चुका था और अब वह अपनी चन्दा के लिये दूध और फल जुटाने की कोशिश करना चाहता था; बोला—"फिकर मत कर, आज का दिन कैसे भी काटले, कल से मैं कहीं काम कर लूँगा। काम की कोई कमी थोड़े ही है यहाँ।"

किशन की इस बात से सीता सन्नाटे में आ गई। चुन्नीलाल को कैसा मुँहतोड़ उत्तर दिया था इसी किशन ने!

इस बीच सुरेश का इशारा समझकर कब किरण और उसकी माँ ऊपर चली गई थीं, कोई जान भी न सका। यह तो जब हाथ में दूध से भरा गिलास लिये किरण चन्दा के पास पहुँची तो किशन और सीता चौंक कर देखने लगे।

"पी न चन्दा!" किरण ने बड़े ही स्नेहिल स्वर में अनुरोध किया।

किशन ने कृतज्ञ दृष्टि से एक बार सुरेश को फिर किरण को देखा, फिर चन्दा से कहा—"पीले चन्दा, जिसने जीवन ही लौटा दिया उसके दिये इस दूध की क्या गिनती है, सुरेश दादा, भगवान् ने चाहा तो आपके इस त्याग का मूल्य किसी दिन जरूर अदा कर दूँगा।" कहकर वह चला गया।

दूध पीकर चन्दा वापस लेट गई। किरण एक पल के लिये भी उसे छोड़ना नहीं चाहती थी। माँ बुला-बुलाकर थक गई पर जब उसने सुना ही नहीं तो चन्दा क्षीण कंठ से बोली—"यह क्या पागलपन है किरण। तू तो भूख-प्यास इस तरह छोड़ बैठी है जैसे मैं मर ही रही हूँ।"

किरण ने चट से अपना हाथ उसके मुँह पर दबा दिया, सिहर कर बोली—"मरें तेरे दुश्मन। ऐसी बातें मत कर।"

सिर हिलाने में भी इतना भयंकर दर्द होता था कि चन्दा के मुख से कराह निकल जाती थी और उसकी कराह का स्वर सुनकर सीता का मन घुटने लगता था। भूखा-प्यासा शरीर, ऊपर से रातभर रोते रहने के कारण सीता के हाथ-पैरों में लगता था जान ही नहीं रह गई थी। वह चन्दा के बिस्तर के पास दीवार से टेक लगाये बैठी थी। जब भी चन्दा कराहती उसके मन में दर्द की एक लहर उठती और वह टुकुर-टुकुर उसकी ओर देखने लगती।

दोपहर ढलते-ढलते चन्दा को हल्का-सा ज्वर हो आया, वह चुपचाप आँखें बन्द कर पड़ी थी कि हठात् हाथ पर किसी का शीतल स्पर्श पाकर उसने चौंककर आँखें खोल दी।

उसके सिरहाने की ओर बैठा था सुरेश, चन्दा को आँखें खोलते देखकर मन्द मधुर स्वर में बोला—"कैसी तबियत है चन्दा।"

अत्यन्त क्षीण स्वर में चन्दा ने उत्तर दिया—"ठीक है!"

सुरेश पीड़ित स्वर में बोला—"क्यों मेरा दण्ड तू अपने सिर ओढ़ने चली चन्दा, क्यों तू आगे आई?"

चन्दा नेत्र झुकाकर बोली—"दिया तो ले भी तो लिया।"

"पर यह कष्ट, यह पीड़ा, मेरे देने से तेरे त्याग का क्या मुकाबला चन्दा, काश तेरे इस ऋण को मैं चुका सकूँ?" फिर चुप हो गया। चन्दा भी नहीं बोली। बोलती भी क्या। अपने व्यवहार से ही जो दे दिया था सुरेश ने वह क्या कम था उसके लिये, और वह, वह किसी को क्या दे सकती थी। मन के देय का मूल्य ही क्या है इस संसार में, सिवा मन के वह और देगी भी क्या? पर क्या उसे भी कोई कभी स्वीकार करेगा। एक गरीब, नीची जात

और नीचे खान्दान की लड़की है वह, क्या कभी अपना देय प्रकट भी कर सकती है वह ?

"मैं परसों चला जाऊँगा चन्दा।"

इस बार भी कोई उत्तर नहीं दिया चन्दा ने। और भी बहुत देर तक बैठे रहने के बाद एक गहरी साँस भर कर सुरेश उठ खड़ा हुआ, बोला—"मेरा बात करना शायद अच्छा नहीं लगा तुझे। ठीक है मैं जाता हूँ।"

फिर भी नहीं रोका चन्दा ने, सुरेश दो पल उसे देखता रहा फिर चला गया और चन्दा उसी तरह आँखें बन्द किये पड़ी रही, फिर धीरे-धीरे उसकी उन्हीं बन्द पलकों में मोती बन-बन कर लड़ियाँ-सी टूटने लगीं।

किशन उस दिन बहुत रात गये घर लौटा, बड़ा क्लान्त था, दिन भर भटका था। इतना अधिक थक गया था कि आते ही सो गया। दूसरे दिन सबेरे उठते ही वह नदी चला गया।

सीता से वह आँखें भी नहीं मिलाना चाहता था। कल दिन भर भटकते रहने पर भी उसे कोई नौकरी नहीं मिल सकी थी जब कि उसने कहा था, 'काम की यहाँ कमी थोड़े ही है।' काम करनेवाले बहुत हैं और काम है कम, इसका अनुभव उसे पहले तो था नहीं, जब हुआ तो अपने पर इतनी लज्जा आई कि सबेरा होते ही मुँह छिपाकर भाग खड़ा हुआ।

बिना कपड़े उतारे ही वह घाट की सीढ़ियाँ उतर कर पानी में पैर डालकर बैठ गया। कल दिन भर वह जिस तरह वह दर-दर भटका था, स्वभाव के विपरीत नौकरी के लिये खुशामद करता फिरा था उस अपने मानसिक पतन से वह अपनी ही दृष्टि में कितना गिर गया था। कभी किसी के सामने सिर क्या, एक अँगुली भी नहीं झुकाई थी उसने। चन्दा के खातिर वह अब सारा ही झुक गया

था। अपने हाथों अपनी बहन का रक्त बहाया था उसने। उसका हृदय रह-रह कर कराह उठता था। पहले कब किसी को उसने परवाह की थी। लोगों के सिर फोड़ने में उसके हाथ की लाठी कभी पीछे नहीं रहती थी। शहर में जरा भी फसाद हुआ नहीं कि वह अपने 'पंचशील' के साथ प्रस्तुत मिलता, मरना-मारना उसके लिये खेल के समान था, पर कल से वह एकदम टूट गया था, क्या मुँह लेकर सीता के सामने जाये।

महमूद सदा की तरह सबसे पहले पहुँचा। किशन को देखकर वह भी नीचे उतर गया, पास बैठा हुआ बोला—"बड़ी जल्दी आ गया।"

किशन अनमने स्वर में बोला—"हाँ, नींद जल्दी खुल गई।"

"कल अस्पताल क्यूँ गया था? असलम ने बताया, तू जब डॉक्टर के साथ जा रहा था तो वह अपनी अम्मी को लेकर बाहर निकल रहा था। क्या बात थी, कोई बीमार है क्या?"

किशन पानी में कंकड़ फेंककर बोला--"चन्दा का सिर फट गया था।"

इस समाचार से महमूद चौंककर बोला-"कैसे फटा रे! गिर गई थी क्या?"

किशन ने इस तरह उत्तर दिया मानों कोई बात ही नहीं हो--"मैंने मारा था मुग्दर से।" फिर एकदम बात पलट दी--"तैरेगा नहीं आज?"

पर महमूद सुनकर जैसे पत्थर हो गया। घर में एकमात्र चन्दा से ही स्नेह था किशन को, यह महमूद जानता था, फिर ऐसी क्या बात हो गई जो उसे मुग्दर से उसका सिर फोड़ना पड़ गया। उसके मुँह से कोई बात ही नहीं निकली।

औरतों का घाट पास ही था। औरतों को आते देखकर किशन

ने कहा—"यार नहाना हो तो जल्दी से नहा ले। औरतें आनी शुरू हो गई हैं, बिना बात गाली खानी पड़ेगी।"

"यह भी खूब रही, वाह!" कहता-कहता महमूद कपड़े उतार पानी में सरक गया। इधर किशन शरीर पर मात्र लँगोट कसे पानी में उतरने ही वाला था कि सामने की ओर देखकर ठिठककर रह गया।

घाट पर ढेर-के-ढेर कपड़े-कुरती लिए एक सिन्धी और एक राजस्थानी स्त्री में जरा-सी बात को लेकर तूफान उठ खड़ा हुआ। सिन्धी स्त्री ने इस तेजी से कपड़े कूटने आरम्भ किये कि पास ही कपड़े-धोती राजस्थानी स्त्री के मुँह पर साबुन के छींटे लग गये। वह चिल्लाई—"हे, मानजादी राँड थारा डियाँ (आँखें) फूट गया कई।"

सिन्धी स्त्री इस भाषा को शायद समझती थी। इसलिये दूने वेग से कपड़े कूटती हुई बोली—"तेरे फूटे होंगे रंडी डिये।"

फिर तो वह दंगल चालू हुआ कि किशन सारा दुःख भूल ठहाका लगाकर हँस पड़ा और जब नदी में उतरा तब तक महमूद न जाने किन विचारों में खोया दूसरे किनारे के करीब होता जा रहा था। किशन देखते ही चिल्लाया—"अबे, आगे कहाँ जा रहा है, मगर बहुत हैं उस तरफ, पलट जल्दी।" किशन भी उसी की तरफ तैरा।

किशन का स्वर सुन महमूद को होश आया। बरसात का बहुत पानी भर आया था चम्बल में। मगर भी इस समय अधिक ही हो गये थे। आधी नदी कभी की पीछे छूट गई थी दूसरा छोर बस दो हाथ बढ़ते ही तो था। घबराकर महमूद पलटा पर दस हाथ भी नहीं गया था कि नीचे से किसी ने दोनों पैर दबोच लिये। उसने पैर खींचने के लिये बहुत जोर लगाया, पर बेकार। वह पानी

में खिचने लगा। किशन को आगे बढ़ते देख भयभीत स्वर में चिल्लाया—"मत आ किशन, पलट जा, मगर ने मेरे दोनों पैर दबोच लिये हैं।"

किशन ने तीर की तरह हाथ पैर चलाते हुए चिल्ला कर कहा—"हिम्मत मत हार महमूद। जोर लगा। मैं आया।"

महमूद आर्त्त कंठ से डकराया--"लौट जा किशन, एक की जगह दो की जान क्यों जाये। किशन--अब्बा को कहना, हाय अल्ला....पर इसके आगे के स्वर पानी के बुलबुलों में सो गये; किशन के पहुँचते-पहुँचते तक तो महमूद का पूरा शरीर पानी में जा चुका था।

किशन गला फाड़ कर चिल्लाया--"महमूद।"

किनारे की औरतों में शोर मच गया--"अरे डूब गयो रे, डूब गयो रे।"

जान हथेली पर रख कर किशन ने नदी को उलीच कर रख दिया; पर महमूद तो आँधी के वेग में खो गये पत्ते के समान नदी में विलीन हो गया था, थकान से किशन का शरीर चूर हो गया था पर महमूद को पा लेने की आशा से वह बार-बार पानी में गोते लगाता और निराश होकर ऊपर आ जाता। महमूद आखिर नहीं ही लौटा। किशन की छाती अन्दर-ही-अन्दर फट रही थी। बचपन से, धार्मिक भेदभाव भूल कर दोनों दो शरीर एक प्राण होकर रहे थे। एक के पसीने की जगह खून बहाने को दूसरा तैयार रहता था; वही बचपन का साथी अब सदा-सदा के लिये बिछुड़ गया। किशन तो यों ही टूट चुका था, महमूद के इस दुखद अन्त ने उसके टूटे मन को एकदम ही निष्प्राण कर दिया। हारा, थका, टूटा मन लिये वह किनारे की ओर लौट आया।

औरतें चिल्ला-चिल्लाकर पूछ रही थीं—"कौन डूब गयो, कैसे डूबो भायाजी।"

किशन ने किसी को उत्तर नहीं दिया। पानी से निकल कर वह चल पड़ा। गीला लँगोट पहने अपने और महमूद के कपड़ों को छाती पर दबाये मतवाले शराबी की तरह लाल सुर्ख आँखें किये उसे ऊपर आते देख अभी-अभी आया मनोहर चौंक पड़ा—"यह क्या किशन।"

किशन ने रोती दृष्टि से देखा, भर्राये कंठ से कहा—

"महमूद गया।"

सुन कर मनोहर तीर की तरह नदी की ओर भागा और किशन सीढ़ियाँ पार कर बाजार में पहुँच गया। महमूद ने कहा था 'अब्बा को कहना', किशन लड़खड़ाती चाल से बढ़ता चला गया। सभी जानते थे उसे, उसके ठाठ और उसकी शान को। आज का उसका यह स्वरूप देख कर लोगों की आँखें आश्चर्य से फट गयीं। जितने मुँह थे उतनी ही बातें भी थी—"शराब पिये है साला।"

"अरे गुंडा है, बेटा जी को कोई सवा सेर मिल गया होगा आज।"

"बाप सटोरिया और बेटा शराबी।" लोग ठहाका मार कर हँस पड़े।

किशन ने सुना सब पर समझा कुछ भी नहीं। उसकी आँखों में नदी का घरघराता पानी था, जिन्दगी के लिये लड़ रहे महमूद का आर्त्त मुख था और बस, उसके आगे सब शून्य था। वह चलता गया।

महमूद का अब्बा घर के दरवाजे पर बैठा सुरती मल रहा था। उसकी सफेद दाढ़ी छाती तक झूल आई थी, बड़ा नेक, बड़ा शरीफ था यह रमजान! किशन से भी वैसा ही प्रेम करता था जैसा महमूद से। ऐसी हालत में उसे देख वह सुरती मलना

भूल गया, चकित होकर बोला—"किसना, क्या बात है बेटा ?"

किशन ने श्मशान की ओर देखा, उसके ओंठ हिले—"म.... ह....म....महमूद...."

"वह तो नदी गया है, तुझे नहीं मिला ?"

किशन ने फिर कुछ कहना चाहा—"म....महमूद....महमूद।"

अब रमजान घबराया। किशन की हालत देख कर वह यों ही शंकित हो गया था और अब इसे बार-बार महमूद का नाम लेते देख उसकी छाती मारे आशंका के जोर-जोर से धड़कने लगी, घबराहट के मारे उसके मुख से निकले शब्द कांप रहे थे—"खैरियत तो है किसना ! महमूद कहाँ रह गया, तेरे साथ क्यों नहीं आया ?"

किशन का सिर चकराने लगा। दोनों हाथों से सिर को दबाता हुआ बोला—"महमूद ने कहा था अब्बा से कहना। क्या-क्या कहूँ मैं ? फिर रमजान की ओर फटी-फटी आँखों से देखकर कहा--'बस चला गया वो। क्या कहूँ मैं तुमसे ? ये हैं उसके कपड़े।"

रमजान बुरी तरह कांप उठा—"कहाँ चला गया महमूद। जल्दी बता किसना, मेरा दम निकल रहा है।'

"बस, पानी में चला गया, डूब गया उसी दम।"

रमजान की बूढ़ी आँखों में अँधेरा घिर आया। "या अल्ला" उसके मुँह से निकला और वह अचेत देहरी पर लुढ़क गया। रमजान को लुढ़कते देख कर किशन की चेतना लौटी। पता नहीं क्या कहा था उसने ! दुःख और पीड़ा ने उसकी भावनाओं को इस तरह जकड़ लिया था कि एक बूँद आँसू भी नहीं गिरा अभी तक उसकी आँखों से, वह रोना चाहता था। जोर-जोर से रोना चाहता था और सचमुच दूसरे ही पल वह बुक्का फाड़ कर रो दिया।

फिर उल्टे पैरों, रमजान को वैसे ही पड़ा छोड़ कर भाग खड़ा हुआ।

छोटा-सा शहर और फिर महमूद था बदनाम, 'पंचशील' का एक सदस्य। थोड़ी ही देर में आग की तरह सारे शहर में उसके डूबने का समाचार फैल गया। बढ़ते-बढ़ते इस दुर्घटना ने साम्प्रदायिक रूप धारण लिया। महमूद के जाति-भाई किशन के खून के प्यासे हो गये।

इधर किशन रमजान के घर से भाग कर सीधा नदी पर और सारा दिन भूखा-प्यासा एक झाड़ी की ओट में दुबका रहा। नदी में जाल डाले गये और वह खाली जालों को ऊपर आते देखता रहा। भयभीत चुन्नीलाल चुपके-चुपके उसका नाम लेकर पुकारता रहा और वह सुनता रहा।

"साले उस काफिर किसना की बदमाशी है। तभी इस तरह गायब हो गया है बेटा। कैसा ढोंग करता था दोस्ती का, कहीं मिले तो सही, बोटी-बोटी काट कर न खिला दी चील-कौवों को तो हम मुसलमान नहीं।"

किशन ने सब सुना, सब देखा; पर वह अपनी जगह से नहीं हिला। प्रतिवाद करने की भी कोशिश नहीं की और असलम को इस समुदाय में देख कर भी कुछ आश्चर्य नहीं हुआ उसे।

रात होते-होते नदी का किनारा विधवा की सूनी माँग-सा जनहीन हो गया। खूब अँधेरा घिर जाने पर किशन झाड़ी से बाहर निकला। दिन भर से वैसे ही बैठा रहा था वह। ओठों पर पपड़ी जम गई थी, आँखों के पपोटे भारी होकर नीचे की ओर लटक आये थे, वह धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतर कर पानी के पास आ बैठा। महमूद का वह भयार्त्त कंठस्वर दिनभर से उसकी छाती

को मथ रहा था। कितनी कोशिश की उसने, कितना ढूँढा उसे, पर लोगों ने क्या कहा उसके लिये, 'काफिर', 'धोखेबाज।'

किशन की जल रही आँखों में पानी छलछला आया। कितनो रात तक वह बैठा रहा और रोता रहा नहीं मालूम। हठात् अपने नंगे कंधे पर किसी के हाथ का स्पर्श पाकर वह चौंक पड़ा—"कौन ?"

"मैं असलम, कब से तुझे ढूँढ़ता फिर रहा हूँ, गली में होकर मत जाना, लोग तेरी घात में बैठे हैं, मैं साइकिल लाया हूँ, पीछे की तरफ से चलेंगे। उनका ख्याल है महमूद की मौत में तेरा हाथ है, बस एक रमजान चचा ही है जो तेरी तरफदारी कर रहा है।"

"और तू ?"

असलम उससे लिपट गया—"यह तूने क्या पूछा किशन ?"

इस वार किशन छलछलाई आँखों से नदी के मटमैले जल की ओर ताकता हुआ बोला—"भगवान जानता है असलम, या फिर महमूद जानता था कि यह सब कैसे हुआ। मैं तो औरतों की लड़ाई देखने में ही रह गया और वह दूसरे छोर की ओर बढ़ता गया, जब तक मैं भागूँ-भागूँ तब तक तो वह पानी में गुम हो गया। कितना तलाश किया, पर वह नहीं मिला। उस पर भी ये लोग कहते हैं, मैंने उसे मार डाला !"

असलम स्नेह से उसका नंगा कंधा थपथपाकर बोला—"सच बात पर यकीन लाने से लोगों के दिल में फैली बेइमानी की जड़ें नेस्तोनाबूद हो जाती हैं किशन, इसीलिये सच बात पर कोई ईमान नहीं लाता। तेरी दोस्ती पर यकीन रखकर भी वे तुझे नहीं समझेंगे। उनके दिलों में नफरत भड़क चुकी है। पर अब देर मत कर। यहाँ से भाग जा। यह ले खर्च के पैसे।"

"पंचशील" समाप्त हो गया था। एक सदस्य मर चुका था और दूसरा उसकी मृत्यु का झूठा कलंक अपने सिर पर लिए घर से दूर पता नहीं किस अनजानी दिशा की ओर भाग रहा था। ट्रेन उसे पत्ते की तरह उड़ाती लिए चली जा रही थी।

—:o:—

: १० :

महमूद को मगर निगल चुका था, किशन ने सम्भवतः सदा के लिए जन्म-स्थान छोड़ दिया था, दोनों मित्र थे। जातिपाँति की सीमा से परे स्नेहसूत्र में बँधे; पर शहर की दोनों कौमों के 'दादा लोग' लाठियाँ ले-लेकर अखाड़ों में जमा होने लगे और भयार्त्त दूकानदार अपनी दूकानें बन्द कर भाग खड़े हुए। निरीह प्रजा घरों में दुबक गई। शहर की सड़कों पर सन्नाटा छा गया, केवल पुलिस की जीप गाड़ियाँ कभी-कभी भन्नाती हुई निकल जाती थीं। सिवा "दादाओं" के सभी के प्राण काँप रहे थे। राम जाने आज क्या होगा; खुदा रहम करे। पंचशील के सदस्य बिखर गये थे और बहुत दिन से हाथ-पर-हाथ रखे चुप बैठे दोनों ही कौमों के दादाओं की बन आई।

पर हुआ-हवाया कुछ नहीं, दादा लोग लाठियाँ उछाल-उछाल कर ही रह गये, पुलिस के डर के मारे हाथ की लाठी एक बार भी किसी के सिर पर टूट नहीं पाई। पर दादाओं के घरों में कुछ दुकानों की लूट के सामान भर गये। दो दिनों में सारा शोर-गुल शान्त हो गया, नगर का काम ज्यों-का-त्यों पहले की भाँति आरम्भ हो गया।

चन्दा के कमजोर शरीर पर किशन के एकाएक लापता हो जाने का आघात इतना गहरा पहुँचा कि सुनते ही वह बेहोश हो गई। सीता को रह-रह कर बेहोशी के दौरे आ रहे थे और चुन्नीलाल अभी तक घुटनों में मुँह डाले बैठा था।

उस दिन गणेशी लड़ पड़ा था, वही आज आँसू भरी आँखें लिये चुन्नीलाल के सामने बैठा था। किशन के लापता हो जाने से सभी को दुःख हुआ था। बहुतों को तो यह शक था कि दूसरी कौमवालों ने उसे खपा डाला है। दुबला-पतला असलम अपनी जान के भय के मारे अपने घर में दुबका पड़ा था और किशन कहाँ है यह किसी को पता नहीं था।

बर्बादी जब एक बार घर देख लेती है, तो फिर आखिरी साँस तक मनुष्य का पीछा नहीं छोड़ती। अभाग्य ने चुन्नीलाल का पल्ला पहले-पहल उस दिन पकड़ा था जब गणेशी के कहने पर उसने रामजी भाई से कर्ज लेकर सट्टा किया था। उसके बाद दिन-पर-दिन उसके भाग्य पर धूल को परतें जमती चली गयीं। रामजी भाई का कर्जा सिर पर था, चन्दा के सौदे थे और किशन के बारे में उनको निश्चय हो गया था कि दूसरी कौमवालों ने उसे खपाकर शव कहीं छिपा दिया है।

आधी रात गये तक सब बैठे रहे, फिर उठ गये। अन्दर से रह-रहकर सीता का रुदन स्वर चुन्नीलाल के कान में पड़ता और वह एक बार काँपकर फिर स्थिर हो जाता। उसने एक बार भी अन्दर जाकर सीता को सांत्वना नहीं दी, मूर्छित चन्दा को आँख भर नहीं देखा।

कोई बारह-साढ़े बारह बजे सुरेश उसके पास आया—
"चुन्नीलाल।"

इस बार रीती-रीती दृष्टि से चुन्नीलाल ने सुरेश को देखा फिर जरा रुककर उत्तर दिया—"हाँ भायाजी।"

अधजले पेड़ के ठूँठ के समान काला और श्री-हीन हो गया था चुन्नीलाल का चेहरा। देखकर सुरेश की आँखें छलछला आयीं, कहा—"उठो चुन्नीलाल, घर में चलकर सोओ। मुझे विश्वास है कि तुम्हारा किशन कहीं चला गया है, उसके सम्बन्ध में व्यर्थ की अशुभ बातें मन में मत लाओ, उठो।"

भायाजी, चुन्नीलाल के ओंठ थरथराकर रह गये।

सुरेश के स्वर ने चुन्नीलाल की चेतना पर पड़ा कुंठा का परदा उठा दिया। उसकी छाती में एक दर्द-सा उठा। वह बुक्का फाड़कर रो उठा। दिन भर में पहली बार उसकी आँखों से आँसू निकले। सुरेश यही तो चाहता था, वह दुखी नेत्रों से रोते चुन्नीलाल को देखने लगा। उसे चुप करने की उसने कोशिश नहीं की। चुन्नीलाल की आँखों में एक बार आँसू उमड़े, तो फिर रुके नहीं। वह हिचकियाँ भर कर रो रहा था। रुदन के साथ उसकी छाती में छिपा असीम दुःख भी गल-गलकर बहने लगा।

सुरेश ने हाथ में बँधी घड़ी देखी। रात के बज रहे थे। सीता निर्जीव-सी जमीन पर लोटी पड़ी थी और चुन्नीलाल आँखें बन्द किये दीवार के सहारे टिका था। एक ही दिन में वह जैसे दस वर्ष आगे बढ़ गया था। कितनी झुर्रियाँ चमक रही थीं उसकी आँखों के नीचे।

"आह" चन्दा कराही।

सुरेश चौंककर उसकी ओर देखने लगा। चन्दा कसमसा रही थी, कदाचित् उसकी चेतना वापस लौट रही थी। सुरेश व्याकुल नेत्रों से उसकी ओर देखने लगा। चन्दा उसके मन पर अपना अधिकार जमा बैठी थी।

"पानी।" चन्दा के ओंठ हिले।

सुरेश जल्दी से एक गिलास में पानी भर कर ले आया, थोड़ा-थोड़ा पानी वह चन्दा के मुख में डालने लगा, फिर जेब से रूमाल निकालकर उसके पीले, पपड़ी जमे ओठों को धीरे-धीरे पोंछ दिया।

पानी पीकर चन्दा की खोई चेतना धीरे-धीरे लौटने लगी। उसका सूखा कंठ तर हुआ, तो उसने धीरे से पलकें खोलीं। दो पल अजनबी आँखों से सुरेश की ओर ताका, फिर क्षीण स्वर में कहा—"आप!"

सुरेश व्याकुल उत्कंठा से उसके मुख पर झुक गया—"हाँ चन्दा, मैं हूँ सुरेश, कैसा जी है तेरा।"

"ठीक है।" चन्दा ने सिर घुमाना चाहा पर चोटीले सिर में इतनी भयंकर पीड़ा था कि वह घुमा नहीं सकी, कराहकर रह गई।

"दर्द होता है?"

"हाँ।"

सुरेश का हृदय भर आया, बोला—"मेरी बला अपने सिर ले लिया तूने।"

हठात् चन्दा की आँखों में सारे दृश्य घूम गये और उसी के साथ आँखों में उभरा किशन का छुरों से बिंधा शरीर, उसके ओंठ काँप उठे, पूछा—"दादा, मेरा दादा कहाँ है।"

सुरेश पत्थर की तरह बैठा रहा।

चन्दा छटपटाकर बोली—"कहाँ है मेरा दादा, बोलो न।"

चुन्नीलाल ने हड़बड़ाकर आँखें खोल दीं—"चन्दा।"

"बापू, मेरा दादा कहाँ गया?" छातीफाड़ स्वर में चन्दा रो उठी। सीता उठ बैठी, चन्दा को रोती देख वह भागकर उसके पास आई, और उसे अपनी गोद में भरकर बिलख उठी—

"चन्दा री, भायाजो कहते हैं कि तेरा दादा कहीं गया है और वह जल्दी ही वापस लौट आयेगा।"

"सच।"

"हाँ चन्दा, बिलकुल सच। अब तुम सो जाओ।"

सुरेश चुपके से उठ खड़ा हुआ, चन्दा की आँखें ढँपने लगी थीं। चुन्नीलाल और सीता की पलकें भी मुँद रहीं थीं।

—:o:—

: ११ :

कितने दिन, कितनी रातें निकल गयीं; चन्दा के पास इसका कोई हिसाब नहीं था। दिन और रात अपने क्रम एक चक्र में बँधे पूरे करते रहते हैं, वह क्रम शान्ति से अपना चक्कर पूरा करे अथवा अशान्ति से यह मनुष्य के मन की अवस्था पर निर्भर है। मनुष्य को सदा सुख ही मिले, प्रकृति ने यह नियम नहीं बाँधा, सुख के साथ दुःख भी मनुष्य के जोवन से बँधा चलता है। दुख मिलने पर हो तो सुख के आनन्द का ज्ञान हो पाता है मनुष्य को, अन्यथा सुख की परिभाषा कदाचित् वह कभो समझ हो न सके।

यों इस सत्य के अपवाद भी हैं। चुन्नीलाल जैसे व्यक्ति भी हैं इस संसार में, जिन्हें सुख का कदाचित् कभो अनुभव ही नहीं हो पाता। दुःख और पीड़ा से घुटे-घुटे ही जिनका सम्पूर्ण जोवन निकल जाये, बहुत दुःख मिलने पर मनुष्य के मन में इतनी क्षमता तो आ ही जाती है कि वह दुःखो को अपना जीवन न खाने दे। चुन्नीलाल जन्म का अभागा था, तेरे-मेरे घर की रोटी खाकर पला था। लोग खाने को देते तो साथ में ताने और लांछना भी

झोली भर दे दिया करते थे। इसी तरह वह बालक से युवक बना था। लिखना-पढ़ना उसने सीखा नहीं था, सिखाता ही कौन। सिर पर कोई नहीं था। कमाई करने लायक़ हुआ तो जीवन में मस्ती आ गई, पर वह सीता के आते ही समाप्त हो गई। पाँच रुपये से नौकरी करना आरम्भ करके वह बुढ़ापे में पचास कमा रहा था; पर वे पाँच अंगों के पवारा से अच्छे थे; अब उन पचास को भी बत्ती लगाना चालू कर दिया। जरा-सी छूट मिली कि चुन्नीलाल आँधी के साथ उड़ गया।

जवान बेटा लापता हो गया। घर की हालत दिन-पर-दिन गिरती चली गई। चुन्नीलाल ने देखा भी और समझा भी; पर उसके पाँव फिर भी पीछे नहीं लौटे। महीने-पर-महीने निकलने लगे, घर में बर्बादी घुस आई पर न तो उसका 'बजार' जाना ही छूटा और न उसने तनखा का एक पैसा ही सीता को कभी दिया। किशन के न रहने से उसका भय भी समाप्त हो गया था। लज्जा तो पहले ही समाप्त हो गई थी।

जाते समय, सबसे छिपाकर सुरेश ने कुछ रुपये सीता के हाथ पर रख दिये थे। सीता ने छलछलाई आँखों से बहुत मना किया, पर सुरेश ने यह कहकर, "किशन यहाँ नहीं है, मुझे उसकी जगह क्यों नहीं समझ लेती तू।" उसका मुँह बन्द कर दिया। सीता को रुपये लेने पड़े और उन रुपयों से उसने चन्दा की चिकित्सा कराई और घर का खर्च चलाया। कुछ दिन आशा की कि कदाचित् अब चुन्नीलाल राह पर लग जाये; पर जब वह आशा पूरी नहीं हुई और सुरेश के दिये रुपये चुक गये, तो सीता दो-तीन घरों में चौका-बर्तन करने लगी।

पहले कभी किया नहीं था ऐसा काम, करेगी यह भी नहीं सोचा था, पर जब करना पड़ा तो उसका टूटा मन चकनाचूर हो

गया। अकेले में वह फूट-फूटकर रोती थी, दुःख और वेदना से उसका कमजोर शरीर और भी कमजोर पड़ता गया। माँ-बाप उसके कभी के मर-खप गये थे, भाइयों के सामने सहायता के लिये हाथ पसारते शर्म आती थी। रोते, तड़पते वह जीवन का भार ढोये चली जा रही थी।

चन्दा के सिर पर घाव का निशान अभी भी था। शीशे के सामने खड़े होते ही निशान पर दृष्टि जाती और उसकी आँखें छलछला आतीं। आँखों के आगे अपने बाँके, सजीले भाई की आकृति उभर आती तो उसकी छाती फटने लगती। सुरेश ने कितना समझाया था उसे, किस तरह उसने सांत्वना दी थी, उस बार का उसका जाना चन्दा को कैसा लगा था, वह किसी से क्या कहती? जाते समय भर दृष्टि उसे देखा भी नहीं उसने और जब उसने पत्र लिखने का कहा तो न 'हाँ' भर पायी थी न 'ना' कहा था।

एक दिन छत के कोने में बैठकर किरण ने उससे पूछा—"आज एक बात पूछूँ चन्दा?"

"पूछ।"

"तू उस दिन सुरेश दादा के आगे आकर क्यों खड़ी हो गई थी?"

भर रहे घाव को कोई सुई से कुरेदे तो कैसी पीड़ा होती है। किरण के प्रश्न ने भी चन्दा के हृदय को इस तरह मथा कि मारे व्यथा के उसका मुँह पीला पड़ गया। बहुत सम्हाला अपने को, पर उमड़ते रुदन को वह रोक नहीं पाई। दोनों हाथों में मुँह छिपाकर वह रो पड़ी।

प्रश्न पूछते ही किरण को अपनी गलती का भान हो गया था। किशन का प्रसंग छिड़ने पर चन्दा को कितना दुःख होता था,

यह जानकर भी जब वही प्रसंग छेड़ बैठी तो उसे अपने पर बहुत खीझ आई। मन-ही-मन अपने को कोसते हुए दीन स्वर में बोली—"रो मत चन्दा, मुझे विश्वास है कि तेरा भैया कहीं गया है और वहाँ से शीघ्र लौटेगा। मेरी रानी बहन, रो मत।" कातर होकर किरण ने चन्दा का हाथ पकड़ लिया।

जी भर कर रोई चन्दा। पीड़ा जब मर गई तो उसने आँखें पोंछ डालीं, भर्राये स्वर में कहा—"दादा अब नहीं हैं, यह मानने का साहस नहीं हो पाता किरण, कितनी ताकत थी उसमें, कितना साहसी था वह। अखाड़े में कोई नहीं हरा पाता था उसे। पर आज वह नहीं है, पता नहीं कहाँ है? है भी या नहीं है।" कहते-कहते फिर उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे।

किरण पीड़ित नेत्रों से उसका मुँह देख रही थी।

चन्दा आँसू पोंछती हुई बोली—"क्यों आई थी उस दिन बीच में, बताऊँ किरण? न आती तो मेरा दादा खूनी कहलाता; दुनियाँ थूकती मेरे नाम पर। मेरा खून बहा, मैंने दुःख झेला पर वह तो बदनामी से बच गया किरण।"

किरण ने सुना तो, पर कुछ कहा नहीं।

चन्दा ने आँचल से नाक और आँखें पोंछ डालीं, फिर मुँह फिराकर डूबते सूर्य की ओर देखने लगी। उस दिन का दृश्य उसकी आँखों में नाच गया। किशन की क्रोध के मारे अंगारे-सी सुर्ख हुई वे आँखें और सुरेश के मुख का निडर भाव। किशन के मुग्दर उठाने पर भी वह नहीं घबराया था, उसी तरह अविचल खड़ा रहा। मुग्दर के हवा में लहराते ही चन्दा तीर की तरह सुरेश के सामने आ गई। क्यों आई थी वह, क्या केवल इसीलिए कि किशन के ऊपर कलङ्क न आए? क्या और कोई भाव नहीं

था सुरेश की रक्षा करने को ! नहीं, झूठ है यह । अपनी आँखों के सामने वह सुरेश को यों घायल होते नहीं देख सकती थी ।

चन्दा का सारा शरीर इस अनोखी और नई अनुभूति के उद्‌घाटन से सिहर उठा ।

आखिर बहुत देर बाद किरण बोली--"हो सकता है तू इसीलिए दादा के आगे आई हो, पर उन्होंने तो कुछ और ही समझा था ।"

रोने से लाल हो गई अपनी आँखों की जिज्ञासु दृष्टि किरण के मुँह पर जमा कर पूछा चन्दा ने--"क्या समझा था ।"

किरण धीमे स्वर में बोली--"उन्होंने शायद समझा कि तू उन्हें, मेरा मतलब है चन्दा कि दादा ने समझा, दरअसल बात यह है...." पर चन्दा के मुँह का भाव देखकर सच बात नहीं कह पाई ।

पूरी बात न सुन सकने पर भी बात का अर्थ चन्दा समझ गई । समझते ही पहले तो उसका मुँह आग की तरह गर्म और लाल हो गया पर दूसरे ही पल एकदम पीला पड़ गया । अपने मन की इस कमजोरी को वह किसी को कैसे बता देती । जहाँ तक वह पहुँच नहीं सकती वहाँ पहुँचने की वह कोशिश करेगी । यह सम्भावना वह किसी के मन में उत्पन्न नहीं करना चाहती थी । सुरेश के मन में भी नहीं । जवाब देने के पहले उसके ओंठ थरथराए । मन को मानो किसी ने चीर दिया पर ऊपर से कठोर होकर उसने कहा--"अपमान करती है ।"

किरण रुआँसी हो गई--"अपमान मैंने कहाँ किया चन्दा ?"

चन्दा ने काँपते ओठों को दाँतों से दबाकर पलभर में पीड़ा के वेग को सम्हाल लिया, फिर बोली--"अपमान नहीं तो सम्मान है यह ! मेरा बापू चपरासी है, मेरी माँ लोगों के जूठे बर्तन साफ

करती है। तू ब्राह्मण है और मैं माली की बेटी हूँ। इसलिए शायद मेरी कोई इज्जत ही नहीं है तुम लोगों की दृष्टि में। तुम लोगों के चौके में मैं जा नहीं सकती, मेरा छुआ तुम लोग खा नहीं सकते; कल को तुम्हीं लोग कहोगे, छि: माली की बेटी, ब्राह्मण की सन्तान की बराबरी करने चली है।"

"पर चन्दा...." किरण ने कहना चाहा।

चन्दा ने बात काट दी—"नहीं किरण नहीं, आगे से कभी ऐसी बात न कहना। अपनी स्थिति मुझे भूली नहीं है, बार-बार उसकी याद दिलाने की जरूरत नहीं है।" फिर तेजी से पलट कर वह सीढ़ियाँ उतर गई।

किरण के सिर पर जैसे पत्थर फेंक दिया चन्दा ने। वह तिलमिला कर रह गई। थोडी देर बाद उतर कर अपने कमरे में आई। कुछ देर सोचती रही, फिर पेन लेकर सुरेश को पत्र लिखने बैठी। इधर-उधर की अनेक बातें लिखने के बाद लिखा—"और यह चन्दा कितनी घमण्डी है। तुम उसके लिए इतने परेशान रहे, पर वह तुम्हारी बात भी करना पसन्द नहीं करती। रूप होने से ही कोई आसमान में नहीं उड़ने लगता। मैंने आज जरा-सा कहा कि दादा समझते हैं कि तू उन्हें चाहती है तो बस फट पड़ी बारूद की तरह। लो, और करो उसकी तरफदारी। वह तो कानी-कौड़ी के बराबर भी नहीं समझती तुम्हें। ऊपर से कहती क्या है कि 'तू अपमान करती है'।" आदि आदि....। वह स्वयं जाकर पत्र डाक में डाल आई।

किरण और चन्दा की वास्तव में सूरज-चन्दा की जोड़ी थी। घर में साथ, स्कूल में साथ, पढ़ें तो साथ, खेलें तो साथ। घर में कोई चीज बनती तो किरण पहले चन्दा को खिलाती फिर खुद खाती थी। वहीं अब यह हाल था कि चार-पाँच दिन से वह चन्दा

को देखकर मुँह सिकोड़ने लगी। चन्दा ने भी ईंट का जवाब पत्थर से दिया। मन किरण से बोलने के लिए तड़पता था पर उसे देखकर वह ऐसा मुँह बना लेती मानो शहद की जगह भूल से कुनीन निगल ली हो उसने। देखकर किरण का मुँह हाड़ी की तरह कुप्पा हो जाता। वाह, एक तो जबान लड़े, ऊपर से बुरा-बुरा मुँह बनाएँ। इतना गुस्सा आता उसे चन्दा पर कि मार-मार कर उसका कचूमर निकाल दे।

चार-पाँच दिन बाद सुरेश का उत्तर आया, बहुत ही संक्षिप्त-सा—"तू किरण एकदम गधी है। अरे, जिस बात का कोई अस्तित्व ही नहीं, उसे कहना अपमान करना ही तो है। कहना उससे कि ऐसी कोई बात नहीं है, और हाँ, तुझे उससे माफी माँगनी चाहिए, समझी।"

"माफी माँगे मेरी जूती।" पत्र पढ़कर किरण बड़बड़ाई, फिर उसे एक किताब में रखकर छत पर चली गई।

गुलाबी जाड़ा पड़ने लगा था। साड़ी के पल्ले को शाल की तरह ओढ़े मुंडेर से खड़ी थी चन्दा। किरण से झगड़ा होने के बाद आज वह छत पर आई थी। यह झगड़ा उसने मन से नहीं किया था, किया था अपनी जरा-सी लज्जा के लिये। उस दिन नाराजी का नाटक वह नहीं करती तो आखिर करती क्या, जो कभी हो नहीं सकता, जो असंभव है उसी के लिये वह कैसे भिख-मंगापन जाहिर करेगी? अब उस किरण को वह क्या समझाये कि उससे बातें करने के लिये वह मन-ही-मन किस तरह व्याकुल हो गई है।

"मरी कितनी गुस्सैल है। पर उन्हें यह भ्रम हुआ ही क्यों? यह सोचा ही क्यों उन्होंने? वे कितने तो बड़े, कितने ऊँचे हैं मुझसे। मेरी जान बचाने के लिये उन्होंने अपने शरीर का रक्त

दिया था काश कि न रक्त देते, मर जाती मैं उसी दिन।" मन-ही-मन यही सब सोच रही थी चन्दा।

किरण ने कोई आहट नहीं की, चुपके से उसके पीछे जाकर खड़ी हो गई।

चन्दा ने गहरी साँस ली। निरंतर की इन चोटों ने उसकी 'बालिका' को एकदम ही निष्प्राण कर दिया था। किशन की स्मृति एक तो यों ही उसका पीछा नहीं छोड़ती उस पर अपने मन की इस पीड़ा ने तो उसे और भी जर्जर कर दिया था। 'मेरे लिये अपने शरीर का खून उन्होंने दिया क्यों' उसके मन में यही एक प्रश्न हजार-हजार बार उठता। पर उसका ठीक उत्तर उसे कहीं नहीं मिलता, बल्कि यह सोचकर कि 'दयावश उसने ऐसा किया होगा' उसके मन पर इतनी गहरी चोट लगती कि उसकी आँखें छलछला आतीं।

किरण चन्दा की बेचैनी देख रही थी। पता नहीं क्या सोच रही थी वह, कौन-सी परेशानी थी उसे, इन पाँच-छः दिनों में एक बार भी वह नहीं बोली थी चन्दा से। उसे बड़ा क्रोध था चन्दा पर, "जरा-सी बात में मरी कैसी उखड़ी है, और दादा लिखते हैं मुझे उससे माफी माँगनी चाहिए, ऊँह माँगे माफी मेरी जूती।"

आखीर के ये शब्द किरण के मुँह से जरा जोर से निकल गए। चन्दा चौंक पड़ी। मुख घुमाकर देखा तो किरण सिटपिटा गई। मुड़कर जाने लगी तो चन्दा ने झुककर उसे पकड़ लिया—"कहाँ चली।"

चन्दा ने मान छोड़ दिया था; पर किरण में अभी अभिमान बाकी था। मुँह फुलाकर बोली—"छोड़ दे।"

"नहीं छोड़ती। बड़ी आई नाराज होनेवाली।"

"और तू बड़ी आई डाँटनेवाली। हाँ, नहीं तो।"

चन्दा को हँसी आ गई--"कब डाँटा मैंने ?"

"नहीं डांटा था उस दिन ! एक तो जनाब इसके लिए जान दो और इनका रुख ही नहीं मिले। नवाबजादी कहीं की।" किरण का अभिमान उतरा तो रोने-रोने को हो गई।

चन्दा तो उससे बोलने के लिए आतुर हो ही रही थी। यह अवसर क्यों छोड़ती। किरण के गले में बाहें डालकर बोली--"अच्छा मेरी गलती हुई, माफ कर दे।"

"हट उधर, छोड़ मुझे।"

"नहीं छोड़ूँगी। कह पहले कि माफ किया।" और किरण ने मुँह फिरा लिया।

किरण ने उत्तर नहीं दिया, तो चन्दा का मुँह उतर गया। धीरे-से उसके गले से अपने कोमल गोरे-गोरे हाथ उसने हटा लिए। क्षणभर उसको ओर देखा फिर एक 'आह'-सी भरकर नीचे जाने के लिए मुड़ी।

किरण ने मुँह उसकी ओर किया। चन्दा को जाते देखा तो पीछे से पकड़ लिया। फिर उसकी पीठ में मुंह छिपा लिया। चन्दा के पैर रुक गए। उसकी आँखें डबडबा आयीं, रुँधे कण्ठ से बोली—"दुःखी मनुष्य का संसार में कोई नहीं होता किरण। तू भी नाता तोड़ ले तो आश्चर्य ही क्या है !"

किरण उसी तरह मुँह छिपाए-छिपाए बोली—"माफ कर दे चन्दा। मेरा तो दिमाग 'आउट' हो गया है।"

चन्दा ने खींचकर उसे अपने सामने कर लिया, उसके फीके मुख पर मुस्कराहट आ गई, बोली—"माँगे माफी मेरी जूती, मेरे लिये ही कह रही थी न तू ?"

किरण का मुख लज्जा से लाल हो गया—"हाँ, सुरेश दादा ने लिखा था माफी माँगने को।"

"उन्हें भी लिख दिया था क्या तूने ?"

"हाँ चल, मुझे दिखाऊँ उनका 'लेटर'। सुलह तो हो ही गई थी। किरण चन्दा का हाथ पकड़कर उसे अपने कमरे में ले गई। किताब से निकाल कर सुरेश का तीन लाइन का पत्र चन्दा के हाथ पर रखते हुए बोली—"देख जरा, मेरे चार पन्नों के पत्र का यह उत्तर आया है।"

पत्र हाथ में लेते ही चन्दा का गोरा-गोरा मुख एकदम लाल हो गया। उस छोटे-से पत्र को उसने एक बार नहीं अनेक बार पढ़ा और हर बार उसके मुख की लालिमा घटतो गई, यहाँ तक कि अन्त में उसका मुख राख के समान फीका और निस्तेज हो गया।

किरण अपनी ही धुन में कहती गई—"इन इंजीनियरों का दिन लोहे-लंगरों से भिड़ते-भिड़ते खुद भी लोहा ही हो जाता होगा। अब तू ही बता मेरी उस लम्बी चौड़ी चिट्ठी का यह भी कोई जवाब हुआ। अरे चन्दा, यह क्या।" किरण चन्दा की सिसकी का स्वर सुनकर चौंककर अपनी बात भूल गई।

चन्दा का सारा शरीर रुदन के वेग से कांप गया। हाथ के पत्र को मेज पर रखकर वह मुँह दबाती हुई नीचे भाग गई।

किरण हतबुद्धि रह गई—ये लो, अब यह भी कोई बात हुई उसने कहा अपने से—फिर धीरे से कुर्सी पर बैठकर सोचने लगी। चन्दा यों ही एक अनबूझ-सी पहेली थी उसके लिये और अब उसे समझना किरण के लिये एकदम ही असंभव हो गया था।

—:०:—

: १२ :

गृहस्थी की गाड़ी फिर घिसटने लगी थी। घिसटना मैंने इसलिए कहा है कि पहले जैसी व्यवस्था अब दिखाई नहीं देती थी। जंग खा गई पहियों की चूलें, पहियों को चलने के लिये मजबूर अवश्य करती हैं पर चलने पर कैसी चूं-चूं की आवाज उन पहियों से निकलती है। सीता भी अपनी मेहनत के जोर से गृहस्थी को चला तो रही थी पर दिन-रात उसकी बर्बादी के चिह्न स्पष्ट-से-स्पष्टतर होते जा रहे थे।

चुन्नीलाल ने तनखा घर में लाना छोड़ ही दिया था, सारा पैसा 'बजार' में ही फूंक आता। उस पर भी मजा यह था कि रामजी भाई के कर्ज की रकम दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही थी। चुन्नीलाल पिछला कर्जा साफ करता कि नया कर्ज सिर पर चढ़ जाता। गणेशी ने एक-दो बार फिर समझाया, लानत-मलामत भी दी, पर इस पर कोई असर नहीं पड़ता था, बेशर्मों की तरह खीसें निपोर देता, कहता—"तू काहे को मरता है बिना बात। मेरा पैसा है, रखूं या फेंकूं, तेरे को के करना है?"

बुरा लगा गणेशी को, खून के घूंट पीता वह, पर ये दुर्दिन थे चुन्नीलाल के इसलिये वह अपनी निभाये चला जा रहा था वरना दूसरा कोई होता, तो सात जूते उसके मुंह पर मारकर अलग हो बैठता।

बाजार में चुन्नीलाल का नाम बदनाम हो चुका था; किसी को उससे सहानुभूति नहीं थी, स्नेह नहीं था। जरूरत पड़ने पर एक पैसा भी उसे कोई नहीं दे सकता था। रामजी भाई चूंकि चन्दा की ताक में था इसलिए चुन्नीलाल को इस तरह कर्ज दिये

जा रहा था कि एक दिन वह इस तरह डूबे इस बाढ़ में कि फिर उबरने का प्रश्न ही नहीं उठे।

आफिस में भी उसका किसी को विश्वास नहीं रह गया था। पक्का कामचोर और झूठा बन गया था वह, हालत यहाँ तक बिगड़ी कि एक दिन बड़े साहब को उसे नौकरी से निकालना ही पड़ा। नौकरी होती भी नहीं थी उससे, निकाल दिये जाने पर रंज की तरह उसे प्रसन्नता हुई। बड़े ही प्रसन्न मन से उसने कैशियर से अपना हिसाब लिया और चल पड़ा।

कुल मिलाकर एक सौ दस रुपये उसे मिले थे। उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। "एक सौ दस।" वह बार-बार मन में दुहराता और नोटों की गड्डियाँ हाथ से सहलाता जाता। इतना रुपया एक साथ उसे पहले कभी नहीं मिला था। आज बड़े ठाठ से उसने पूरा ताँगा किया और घर न जाकर सीधा गोवर्धन की दूकान पर पहुँचा।

गोवर्धन उसे ताँगे से उतरते देख जरा चकित होकर बोला—"वाह यार, बड़े ठाठ हैं आज तो तेरे।

चुन्नीलाल ने उत्तर में जेब से नोट की गड्डी निकाल कर उसके सामने फेंक दी, लापरवाही से बोला—"गिन के देख ले, पूरे एक सौ दस हैं।"

गोवर्धन ने चकित भाव से रुपये उठाकर गिने, फिर कहा—"वाकई ये तो एक सौ दस ही है। कहाँ से लाया इतने रुपये।"

"लाया नहीं, नौकरी से निकाल दिया आज बड़े साब ने। पुरानी नौकरी थी, पिन्सन (पेन्शन) नहीं लिया, इनाम ले लिया मैंने। कैसी रही ?"

घंटाभर भी नहीं लगा इस बात को बजार में फैलते। चुन्नीलाल बड़े गर्व से नौकरी छूट जाने का ढिंढोरा पीट रहा था, मानो

कोई बड़ा काम किया हो उसने। आखिर वह उठा, गोवर्धन की ओर दस रुपये का नोट फेंककर बोला—"आज किस भाव की उम्मेद है गोरधन।"

गोवर्धन मन का अच्छा मनुष्य था, बोला—"सट्टा खेलना बन्द कर दे चुन्नीलाल! अपने घर की हालत देख। यह तो सत्यानाशी चस्का है।"

"सो मैं कोई रोज थोड़े ही लगाऊँगा, धीरे-धीरे करके लगाऊँगा, उस राक्षस रामजी भाई से अब कभी पैसा उधार नहीं लूँगा। भगवान् ने चाहा तो इन रुपयों से हजारों बनेंगे। माँड ले पौवे दो के भाव पर मेरे दस रुपये।"

"मेरी सुन चुन्नीलाल, बेटा पता नहीं कहाँ चला गया है, चाँद-सी बेटी दी है भगवान् ने तुझे, कुछ उसी का ख्याल कर भैया।"

चुन्नीलाल ने टाला—"हाँ, हाँ, सो कोई उसे भूलूँगा थोड़े ही। मैं लड़का तलास कर रहा हूँ। बस साल-दो-साल में हाथ पीले कर दूँगा।"

कितना सीधा, कितना भला था यही व्यक्ति—गोवर्धन लम्बी साँस लेकर बोला—"जैसी तेरी इच्छा दादा। अपना तो कहने का फर्ज था सो कह दिया। मानना न मानना तेरी मर्जी पर है।"

चुन्नीलाल उठकर चल दिया। रामजी भाई से तो वह अब एक कौड़ी नहीं लेगा, हरामी कितना सूद लेता है। उस पर चन्दा को घर बैठाने को बोला था उस दिन। उसकी माँ की....अब जो बोलेगा यह बात तो साले के दाँत तोड़ दूँगा।

"चुन्नीलाल!" रामजी भाई का स्वर था।

रामजी भाई जरा ठंडे स्वर में बोला—"रुपये कब देगा,

रामकली का ब्याव ठहर गया है। मुझे रुपयों की बड़ी सखत जरूरत है, समझा।"

चुन्नीलाल का हाथ अनजाने ही नोटों की गड्डी पर चला गया। गड्डी उसने कसकर हाथ से पकड़ ली, घिघिया कर बोला—"इत्ते दिन दया करी तो कुछ दिन की मुहलत और दो भाईजी। आप जावो, आज मेरी नौकरी भी छूट गई। मैं तो कहीं का भी नहीं रहा।" जो सत्य वह रामजी भाई से छिपाना चाहता था, घबराहट में वही उसके मुँह से निकल गया।

"नौकरी छूट गई?" रामजी भाई चौंका—"तब तो राजा, तू मेरे रुपये आज ही गिन दे, दफ्तर से सौ-पचास तो जरूर ही मिले होंगे। ला, निकाल।" रामजी भाई ने हाथ आगे बढ़ा दिया और चुन्नीलाल को बचे पूरे सौ रुपये उसके हाथ पर रखने पड़े।

रामजी की दूकान की रसीद पर अँगूठा लगाकर चुन्नीलाल खड़ा हो गया।

"तीन सौ पैंतास थे तेरे; पर सौ चुके तो दो सौ पैंतीस रह गये। अब नौकरी भी नहीं रही, यह कर्ज कहाँ से चुकायेगा?" चुन्नीलाल चुपचाप जाने लगा तब रामजी भाई ने मन-ही-मन दाँत पीसे—"कभी तो फँसेगा ही बेटा।"

घर आकर चुन्नीलाल ने साफा उतार कर खूँटी टाँग दिया, कुछ हुआ ही न हो इस तरह बोला—"साब ने नौकरी से निकाल दिया।"

सीता का चेहरा उतर गया, "दुख के मारे रुँध गये कंठ से पूछा—"क्यों?"

उसका इस तरह कैफियत माँगना चुन्नीलाल को जरा भी नहीं भाया, चिड़-चिड़ाकर बोला—"अब साब के मन की बात मैं क्या जानूँ। सुबेर की रोटी हो तो दे दे।"

सुनकर सीता का मन हुआ 'ना' कर दे। पैसा लाकर एक नहीं दे पर खाने को हमेशा चार वक्त चाहिए। इतना निर्लज्ज, इतना बेहया हो गया था चुन्नीलाल। औरत की कमाई पर मौज करते लाज भी नहीं आती थी उसे।

चन्दा आज रोटी खाकर नहीं गई थी। उसी के हिस्से की बच गई दोनों रोटियाँ और मेथी का साग लाकर सीता ने चुन्नीलाल के सामने रख दिया। बिना उसकी ओर देखे कहा—"मैं काम पर जा रही हूँ। कहीं जाना हो तो ताला लगाकर जाना।"

"हूँ," कहा चुन्नीलाल ने और रोटी खाने लगा। देखकर एकदम कड़वा हो गया सीता का मन। मुँह फिराकर वह तेजी से चली गई। चार घरों का चौका-बासन कर शाम के पाँच बजे जब वह घर लौटी तब चुन्नीलाल बिस्तर पर पड़ा खर्राटे भर रहा था। मारे वितृष्णा के सीता का सर्वांग सिहर उठा।

"माँ!" चन्दा का थका स्वर कान में जाते ही सीता ने अपनी भरी आँखें आँचल से रगड़ डालीं। खुद तो दुखी थी ही, आँसू बहाकर उस बच्ची को क्यों दुखी करे। गला साफ करके कहा— "यहाँ रसोई में आजा बेटा।"

बराण्डे में चप्पल उतार कर चन्दा सीधी रसोई में पहुँची। दिनभर की मेहनत और भूख से उसका गुलाब-सा चेहरा एकदम कुम्हला गया था। सूखे ओठों को जबान से तर करते हुए बोली— "बड़ी भूख लगी है माँ। सबेरे की रोटी है?"

सीता का मन भर आया। एक ही सन्तान रह गयी थी, उसे भी वह सुख नहीं दे पाती; व्यथित होकर कहा—"रोटी नहीं है बेटा, तेरे बापू ने खा ली। तू हाथ-मुँह धो, इत्ते में जल्दी से दो टिकड़े सेक दूँगी।

चुन्नीलाल जागकर जमुहाइयाँ ले रहा था। चन्दा पर दृष्टि

गई तो मुस्कराकर बुलाया--"आ गई बेटा ! जानती है आज मैं नौकरी से हटा दिया गया। बड़ी अच्छी बात हुई। ईश्वर के ध्यान में जीवन बिताना चाहता था।" चुन्नीलाल के मुँह से यह सुनकर चन्दा के मुँह से ठण्डी साँस निकल गई। वह चुपचाप उसके मुँह की ओर देखती रही।

रोटी बन गई तो सीता ने चन्दा को पुकारा। चन्दा चली गई; एक चटाई खींचकर सीता के सामने बैठ गई। रोटी के साथ थाली में केवल नमक-मिर्च देखकर सीता से पूछा—"साग नहीं बनाया माँ।"

सीता का मुख व्यथा से कुम्हला गया, करुण दृष्टि से चन्दा की ओर देखकर कहा—"पैसे सब चुक गये बेटा ! नमक-मिर्च से नहीं खा सकेगी ?"

चन्दा थाली पर झुक गई, बोली—"नहीं क्यों खा सकूँगी माँ !" उसने एक कौर तोड़ा और नमक से लपेट कर मुँह में रख लिया। कौर चबाते-चबाते उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। भूख की पीड़ा पहले बर्दाश्त नहीं होती थी उससे, आँखें छलछला आती थीं; पर भूख काटने की जरूरत जब बार-बार पड़ने लगी तो वह आदत बन गई।

"रोटी ले बेटा ! एक ही तो रोटी खाया है तूने।"

"बस माँ !" चन्दा ने मुँह उठाकर हँसने का प्रयत्न किया, कहा—"बहुत भूख जब लगती है, तो खाने की इच्छा मर जाती है। अब रहने दे।"

सीता का मन घिर गया, बोली—"वह तो सच है बेटा; पर शायद कल ये सूखी रोटियाँ भी न मिलें। एक तो और खा ले।"

"नहीं माँ ! बिल्कुल इच्छा नहीं है, और तू फिकर क्यों करती

है। दो-चार महीने की ही तो बात है। दसवीं पास होते ही कहीं-न-कहीं नौकरी मिल ही जायेगी मुझे, फिर नहीं खटना पड़ेगा तुझे।" चन्दा उठ गई और कुल्ला कर वहाँ से चली गई।

सीता भरी-भरी थाली को रीती दृष्टि से देखने लगी।

—:०:—

: १३ :

किरण ऊपर पहुँची तो छत के एक कोने में चन्दा को किताब पर झुके बैठा देखा। बड़ी झुँझलाई वह, पास जाकर किताब छीन ली, कहा--"हट मरी, जब देखो तब किताब में सिर दिये बैठी रहती है। यह भी कोई पढ़ने का समय है?"

चन्दा ने मिन्नत करते हुए कहा—"दे दे किरण! कितने-से दिन रह गये परीक्षा के। अच्छा डिवीजन नहीं आया, तो मेरी सारी उम्मीदें खाक में मिल जाएँगी।"

किरण ने मुँह बनाया—"पण्डितानी जी हमेशा बस पण्डिताई भाषा में ही बात करेंगी। तेरी एक भी बात आजकल मेरी समझ में नहीं आती!"

किरण उसी तरह हँसती हुई बोली--"अच्छा एक बात सुन। अभी मत पढ़, बात कर। रात को मेरे कमरे में आकर पढ़ना। तू पढ़ेगी तो तुझे देखकर मेरा भी मन पढ़ने में लग जायेगा वरना जहाँ अकेली रही कि मैंने रेडियो के कान ऐंठे।"

किरण किताब को बगल में दबाकर चन्दा के पास आकर बैठ ई; पर बोली कुछ नहीं, तो चन्दा ने कहा–"अब कर न बातें।"

किरण ने चुप रहकर कुछ सोचा, फिर कहा—"बातें तो हैं

ही नहीं करने को। जाने दे। आ, अपन कबड्डी खेलें, कितने दिन हो गये खेले।"

चन्दा तत्काल ही मान गई।

दोनों ने अपने-अपने साड़ियों के पल्लू कमर में खोंस लिए और बीच में चप्पल रखकर दो पाले बना लिए। पहले किरण आई--"छिल कबड्डी ताल-ताल, मेरी मूँछें लाल-लाल, छिल....।" फिरकनी की तरह किरण पूरे पाले में नाचती रही; पर एक बार भी चन्दा उसकी पकड़ में नहीं आई। क्षणभर किरण सोचती कि आई चन्दा पकड़ में; पर दूसरे ही क्षण चन्दा इस तरह तैर जाती मानों कोई मछली तैर जाए पानी में। आखिर जब किरण की साँस घुटने लगी तो वह वापस अपने पाले में भाग गई।

अब चन्दा चली—"छिल कबड्डी पानी, मेरी सास कानी। छिल कबड्डी पानी....।" पर इससे पहले कि वह किरण को छूती, किरण उसके बोल सुनकर हँसी के मारे लोट-पोट होती हुई जमीन पर ही ढेर हो गई। चन्दा बिना हँसे, एक लय से अपना वाक्य रटे जा रही थी, यहाँ तक कि वह किरण को घसीटती हुई अपने पाले में ले आई, फिर खिलखिला कर हँस पड़ी। हँसते-हँसते किरण के पेट में बल पड़ गये—"मरी क्या ताल बोला है तूने।"

खिलखिलाती हुई चन्दा बोली--"कमाल तो इस ताल का ही था, तभी तो डोर की तरह खिंचती हुई चली आई। और खेलेगी?"

चन्दा का गोरा-गोरा चेहरा भी हँसी के मारे लाल हो रहा था। गरीबी और भूख की सारी पीड़ा जैसे दूर हो गयी हो।

शर्त के अनुसार रात को दोनों एक साथ पढ़ने बैठीं। चन्दा गम्भीरता से पढ़ रही थी; पर किरण बार-बार उचक रही थी। दो-तीन बार जाकर वह पानी पी आई। आखिर अपनी ड्राइंग

कापी निकाल कर बैठ गई। सब विषयों में कोरी थी वह पर ड्राइंग में वह तेज थी। कदाचित् जन्म से ही वह कलाकार का मन लेकर आई थी। हर सुन्दर वस्तु को वह अपनी कापी पर अंकित कर लेती थी; स्केच बनाने में उसे पूर्ण दक्षता प्राप्त थी। चन्दा को देख-देख कर वह कागज पर पेन्सिल चलाने लगी। आधे घण्टे की मेहनत से उसने चन्दा का रेखाचित्र कागज पर खींच लिया।

इधर चन्दा ने मुँह उठाया। किरण को देखा। वह बड़ी तन्मयता से पेन्सिल चला रही थी। चन्दा को जरा आश्चर्य हुआ। इतनी देर तक, एकाग्र चित्त होकर किरण भी पढ़ सकती है। यह उसके लिए नया अनुभव था, अतः विस्मित होकर पूछा--"क्या लिख रही है इतने मन से ?"

"सवाल निकाल रही हूँ। हाँ, 'डिस्टर्ब' मत कर।"

उसे फिर कापी पर झुकते देख चन्दा चुपके से उठी और उसकी कुर्सी के पीछे जाकर खड़ी हो गई। ठीक चन्दा उतर आई थी सामने के कागज पर। चन्दा का मन किरण की पीठ ठोंकने का हुआ; पर वह चुप खड़ी देखती रही।

आखिरी 'टच' देकर किरण ने सिर उठाया--"हो गया पूरा।" सामने देखा, पर चन्दा गायब।

"अरे, चली गई क्या ? यह चन्दा भी पूरी सनकी है।" कि चट् से आँखें बन्द।

किरण के होश गुम। डरे कण्ठ से घिघियाई--"ओ माँ री !"

और चन्दा आँखें छोड़ खिलखिलाती हुई उसके गले से झूल गई।

"वो आया भूत!" किरण की साँस ऊपर-की-ऊपर और नीचे-की-नीचे रह गई थी, धुक-धुक करती छाती को हाथ से दबाती हुई बोली--"दम निकल जाता मेरा, तब ?"

चन्दा उसी तरह हँसती रही तो किरण को भी हँसी आ गई, बोली—"मरी, इसका बदला लूँगी कभी।"

"ले लेना। मैं कोई तेरे जैसी डरपोक तोड़े ही हूँ।"

"हाँ भई, तू कैसे डरपोक हो सकती है। तभी तो सुरेश दादा कहा करते हैं कि चन्दा लड़की होकर भी आदमी जैसी बहादुर है। मुझे तो बस ऐसी ही लड़कियाँ पसन्द हैं, तेरे जैसी नहीं जो अँधेरा देख कर ही भाग खड़ी हों।"

सुनकर चन्दा को लगा जैसे शरीर का सारा गरम रक्त मुँह पर आकर इकट्ठा हो गया हो। वह जल्दी से वहाँ से नीचे उतर आई।

अपनी कोठरी में आकर चन्दा ने किताबें ताक में रख दीं। उसे पता नहीं कैसा लग रहा था। कभी मन होता था खूब रोये या अपने को इस तरह नोच-खसोट डाले कि सारी देह यहाँ तक कि मन-प्राण तक क्षत-विक्षत हो जाएँ ताकि सुरेश के शरीर का सारा रक्त शरीर में से निकल जाए और वह पहले की तरह जी सके। यह उसे क्या होता जा रहा था। अपनी जान, अपनी औकात, भूलकर किस मरीचिका में फँसती जा रही थी वह। लाख सुरेश प्रगतिवादी हो; पर वह जान-बूझकर उसे उसके स्तर से नीचे तो नहीं खींच सकती थी। रूप और मन की अन्ध-भक्ति के सिवा और कुछ नहीं था उसके पास; फिर मन क्यों दिन-रात सुरेश ही के चरणों में लोटता रहता था। सोते-उठते, खाते-पीते कभी भी तो सुरेश की स्मृति से उसका पीछा नहीं छूटता। उसके प्रति हृदय में यह कैसी तृष्णा, कैसी हूक-सी आ समाई थी।

चन्दा की सारी देह रुदन के आवेग से थरथरा उठी। सीता और चुन्नीलाल सो गये थे। उसका रोना किसी ने नहीं देखा, किसी ने नहीं पकड़ पाया। जी भर कर रो लेने के बाद उसे

कुछ शान्ति-सी मिली, तो उसने उठकर मुँह धोया फिर दीये की बत्ती ऊँची करके किताब खोलकर बैठ गई। पढ़ते-पढ़ते कब वह सो गई उसे पता ही नहीं चला। सबेरे उठी तो उसका शरीर टूट रहा था, कुछ भी करने की इच्छा नहीं हो रही थी। लगता था रत्ती भर शक्ति बाकी नहीं बची हो देह में; पर पड़े भी तो नहीं रहा जा सकता था। दो-तीन दिन बाद ही याद करने की छुट्टियाँ हो जाएँगी। मुख्य-मुख्य प्रश्न इन्हीं दिनों में अध्यापिकाएँ बताती थीं। इस साल प्रथम-श्रेणी में पास होना ही था उसे, नहीं तो नौकरी नहीं मिलेगी। यदि नौकरी नहीं मिली तो फिर क्या होगा इस घर का, दिन-पर-दिन थकी जा रही सीता का?

सिहरकर वह उठकर बैठ गई। सीता अँधेरे मुँह ही काम पर चली जाती थी और चुन्नीलाल नदी से अभी लौटा नहीं था। शरीर में जान नहीं थी फिर भी चन्दा उठी। घर की सफाई की; फिर नहाकर रसोईं की तैयारी में लगी, तभी भींगा अँगोछा नंगे कन्धे पर ओढ़े चुन्नीलाल आ गया—"जोत के लिए घी है बेटा?" बड़े ही ठण्ढे स्वर में चन्दा ने उत्तर दिया—"नहीं है।"

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं।" वह पूजा करने चला गया।

पूजा समाप्त कर वह रसोईंघर में आया—"रोटी बन गई बेटा? तो रख दे झटपट। खाकर जरा बजार का चक्कर लगा आऊँ।"

कलई उड़ी पीतल की थाली में जौ की मोटी-मोटी रोटियाँ और नमक-मिर्च रखकर चन्दा ने थाली चुन्नीलाल की ओर खिसका दी।

"दाल नहीं बनाई?"

बड़ी ही चुभती दृष्टि से चन्दा ने चुन्नीलाल की ओर देखा—"दाल नहीं है घर में।"

चुन्नीलाल ने दृष्टि चुरा ली, जल्दी से कहा—"अच्छा-अच्छा, कोई बात नहीं, नमक से ही खा लूँगा; पर रोटी जरा नरम सेंकियो, कड़ी रोटी साली विना दाल के चबती ही नहीं।"

चन्दा की आँखें छलछला आयीं। मनुष्य के पतन की एक सीमा अवश्य होती है। चुन्नीलाल उस सीमा को भी शायद लाँघ गया था; वरना दिन-रात औरत की खून-पसीने की कमाई पर निर्लज्ज की तरह रोटियाँ न खाता। बूढ़ा नहीं था वह, अशक्त भी नहीं था; फिर भी बैठ कर खाता था। इससे बढ़कर निर्लज्जता और क्या होती ?

न दाल, न भाजी और न थी चुपड़ी रोटी; पर चुन्नीलाल ने खाकर इस तरह तृप्ति की डकार ली मानों षट्रस भोजन किया हो। खा-पीकर 'हरे राम, हरे कृष्ण' रटता वह घर से चल दिया।

भूख होने पर भी चन्दा के मुँह में रोटी नहीं चली, तो वह थाली छोड़कर उठ बैठी। सीता अभी तक नहीं आई थी। दोनों कमरों के किवाड़ बन्द कर चन्दा ने ताला लगाया फिर चाभियाँ दरवाजे की मेहराब पर रखकर स्कूल चली गई।

—:o:—

: १४ :

रामजी भाई के कुटिल इरादे की भनक गोवर्धन के कान में भी पहुँच की चुकी थी। गणेशी की बात चुन्नीलाल ने नहीं सुनी थी, सुनेगा भी नहीं, क्योंकि जब मनुष्य का विश्वास अपने पर से ही हट जाये तब वह सामने दिखते गढ़े को भी नजरन्दाज नहीं कर पाता; यह समझता था गोवर्धन। लेकिन जब पाँच-सात दिन तक चुन्नीलाल 'बजार' में नहीं दिखा तो वह मन में बड़ा प्रसन्न हुआ। अपना विचार उसे मिथ्या लगा। सट्टे और शराब की लत में अन्तर

केवल एक है। शराब मनुष्य की देह को खोखला करती है और सट्टा मनुष्य की गृहस्थी को। बुरी होने पर भी इन लतों को मनुष्य छोड़ नहीं पाता। शराब न मिलने पर मनुष्य की अवस्था मुर्दे के समान हो जाती है और सट्टा करने वाला पैसा न लगाये तो दिन-रात मन में खीझता रहता है। कभी वह पैसे न लगा पाये और यदि उसके सोचे भाव पर बजार बन्द जाये तो वह यह सोचकर कि यदि लगाता तो जरूर जीतता, मछली की तरह तड़पता है; जीतने की यही दुराशा उसे दिन-प्रति-दिन अवनति के गढ़े में ढकेलती चली जाती है।

चुन्नीलाल 'बजार' में नहीं आया, तो गोवर्धन को उसकी मनःशक्ति पर जरा श्रद्धा हुई। इस कमजोरी को जीतनेवाला यह पहला मनुष्य उसकी दृष्टि से गुजरा था।

राम-राम गोरधन, और गोवर्धन चौंक पड़ा चुन्नीलाल को देखकर। चुन्नीलाल मुस्कराया—"हाँ, के हाल है 'बजार' के!"

"बजार के हाल से तुझे क्या करना है?"

"दो रुपये उधार मांड दे मेरे नाम। आज जरा किसमत आजमाऊँगा?"

मानों एक थप्पड़ पड़ा गोवर्धन के ऊपर, इसी चुन्नीलाल की मनःशक्ति के प्रति श्रद्धा हो आई थी। उसे बड़ा-बुरा लगा, रूखे स्वर में बोला—"खेलना है तो नकद पैसे ला, उधारी नहीं चलेगी।"

चुन्नीलाल गिड़गिड़ाया—"यार जेब एकदम खाली है। आज भर को दे दे, फिर मत दीजो।"

गोवर्धन ने साफ इन्कार कर दिया—"नहीं, मैं तुझे उधार नहीं दूंगा।"

इस साफ इन्कार से चुन्नीलाल का मन खट्टा हो गया। एक-एक कर सबसे उधार मांगा था आज उसने। सब इन्कार कर

गये तो आशा लेकर गोवर्धन के पास आया था मन-ही-मन गोवर्धन पर विश्वास था उसे; क्योंकि उसने आज तक न कभी उसे फटकारा था, न कोई बुरी सीख ही दी थी, सो उसी आशा पर जब उसने ठोकर मारी तो वह भी कठोर हो गया, बोला—"अच्छी बात है मत दे। तू नहीं देगा तो भाइजी तो देंगे ही।"

सुनकर गोवर्धन बुरी तरह चौंक उठा—"तू क्या पागल हो गया है चुन्नीलाल? इतनी बात बढ़ गई फिर भी तू उसी से लेगा उधार?"

"काहे नहीं।" कहकर चुन्नीलाल चल दिया। निराशा का बोझ बहुत भारी होकर बैठता है मन पर। भावनाएँ भी इस बोझ के नीचे दबकर मर जाती हैं। चुन्नीलाल के पास नौकरी नहीं थी, पैसा भी नहीं था लेकिन जुआ खेलने का नशा इस तरह चढ़ बैठा था उसके मन पर, उसने उसकी बुद्धि पर धूल की इतनी मोटी-मोटी तहें जमा दी थीं कि वह फिर रामजी भाई के पास उधार लेने चल दिया।

दुकान कोई दस कदम ही रही होगी कि वह कुछ ठिठका।

जाऊँ? पुरानी उधार तो चुकी नहीं, नयी माँगने पर वह देगा थोड़े ही, फिर वही बात कहेगा। नहीं, उससे नहीं कहूँगा। फिर....? सीता को कल ही तो तनखा मिली है। रासन खरीदा तो है उसने; पर रासन में ही सारी तनखा थोड़े ही पूरी कर दी होगी। बस चुन्नीलाल घूमकर वापस घर की ओर चल दिया।

चन्दा ऊपर सीता के कमरे में पढ़ रही थी। बत्ती धीमी करके सीता अपनी थकी देह को लिये जरा लेटी ही थी कि तभी चुन्नीलाल ने धीरे से कुंडी खटखटाई, "मैं हूँ, दरवाजा खोल।"

चुन्नीलाल घर से निकला तो सीता ने सोचा था, आधी रात गये तक वह वापस नहीं लौटेगा। यही नियम भी था उसका, उसी नियम के विपरीत उसका आचरण देख, सीता को जरा आश्चर्य हुआ। उठकर उसने किवाड़ खोल दिये, फिर पलट कर बिस्तर पर जाकर लेट गई।

चुन्नीलाल सीता के पास आकर बैठ गया, प्यार-सुहाग की तमन्ना भर गई थी सीता की, सो जब चुन्नीलाल ने उसे प्यार करने की कोशिश की तो वह तड़प कर दूर खिसक गई, बोली—"सरम-हया सारी बेच डाली है के ?"

चुन्नीलाल को रुपये लेने थे, हँसता हुआ बोला—"अब तेरे से के साथ। तू तो जैसे नई लाड़ी बने जावे।" वह आगे फिर सरका।

सीता उठकर बैठ गई, दोनों हाथों से उसने चुन्नीलाल को परे ढकेल दिया। उसके इस व्यवहार से आज उसे इतनी घृणा हुई कि उसके सारे शरीर में काँटे-से उठ आये, आँखें निकाल कर बोली—"खबरदार जो हाथ लगाया तो!"

चुन्नीलाल इस स्वर से मन-ही-मन ऐंठ तो गया पर चूँकि आज शर्त थी इस कारण यथासम्भव शान्त स्वर में कहा—"अच्छा बाबा, नाराज क्यूँ होवे तू, तू कहे तो नहीं लगाऊँगा हाथ, पर बैठकर बातें तो कर, उसमें तो कोई दोस नहीं है ?"

सीता बिना उत्तर दिये उसे घूरने लगी, वह प्यार कोई मतलब नहीं रखता था उसके लिये, न ही इस पर विश्वास था उसे। जिस प्यार के लिये उसने माँ-बाप, भाई-बन्द सबको ठुकराया था, उसी प्यार का किस तरह गला घोंटा था इस निकम्मे आदमी ने! चुन्नीलाल बातें बनाना सीख गया था, बहुत देर तक, सीता की मुँहदेखी करता रहा और जब देखा कि सीता की आँखें झँपने

लगीं तो वह असली मतलब पर आया—"ऐ, जरा बात सुन तो ! दो रुपये दे दे, बीड़ी-तमाखू लाऊँगा।"

"मेरे पास नहीं है।"

"वाह, अभी दो दिन पहले ही तो तनखा लाई है, नहीं कैसे है ? ला, दे।" कहते हुए चुन्नीलाल ने हाथ पसार दिया।

इस बार सीता शेरनी की तरह बिगड़ गई—"सरम नहीं आती रुपये माँगते ? एक फूटी छदाम नहीं दी मुझे, उस पर महीनों हो गये तुम्हें बैठे रोटी खिलाते, खाते सरम नहीं लगे, माँगते भी सरम नहीं आवे के ?"

इतनी देर से बड़ी नम्रता से चुन्नीलाल बातें कर रहा था, अब क्रोधित हो उठा, औरत की जात, यों मुँह चढ़के बोले ! मारे क्रोध के उसने सीता का हाथ मरोड़ दिया—"के बके है रांड़, मुँह चीर दूँगा।"

सीता दर्द से दोहरी हो गई, उसकी आँखों में पीड़ा के मारे आँसू छल-छला आये, 'हाय' भरकर बोली—"तोड़ दो, तोड़ दो मेरा हाथ, फिर देखूँ कहाँ से मिले हैं तुम्हें चार-चार बार ढकोसने को, काम का न धाम का।"

"रोटी खिलाने का इत्ता गुमान करे है ? मैं जो इत्ते बरस कमा-कमाकर लाता रहा, तेरी औलाद का पेट भरता रहा, सो के सेंत-मेंत ही ? निकाल रुपये।"

"नहीं दूँगी, मार डालो तब भी नहीं।"

"तो फिर ले...." चुन्नीलाल ने दो-तीन झापड़ उसके मुँह पर लगाये। सीता ने जानवर की तरह पिटकर भी चाबी नहीं दी, तो उसने पूरी ताकत से उसका हाथ मरोड़ दिया। घायल शेरनी की तरह सीता ने उलटकर उसके हाथ में इतने जोर से काटा कि चुन्नीलाल के हाथ से खून टपकने लगा। अब तो चुन्नीलाल मारे

क्रोध के आग हो गया—"हरामजादी राँड़, कुत्ती कहीं की" गालियाँ निकालते हुए वह उसकी छाती पर चढ़ गया और जानवर की तरह उसके शरीर के कपड़े नोच-खसोटकर फाड़ डाले। जब लज्जा उघड़ती देखी तो सीता हार गई, चोली फटी तो वहाँ छिपी चाबी चुन्नीलाल के हाथों में आ गई। चाबी लेकर उसने दोनों हाथों से इस तरह उसे मसला की सीता मारे दुःख और लज्जा के मूर्छित हो गई।

बक्स का ताला खोल तनखा के बचे-खुचे रुपये भी जेब में भरकर चुन्नीलाल चल दिया और सीधा गोवर्धन की दूकान पर पहुँचा। जेब से पाँच रुपये का नोट निकालकर उसकी ओर फेंकता हुआ बोला—"अब तो नहीं है उधारी, कर मेरे पाँच रुपये जमा।"

गोवर्धन का मुँह उतर गया, उसने खाते में रुपये जमा कर लिये।

चुन्नीलाल दूकान के तख्ते पर बैठ गया और बीड़ी पीने लगा। हुँ....मेरे से ही राँड़ मर्दानगी दिखाने चली! अरे मरद बच्चा हूँ, औरत यों सिर पे चढ़े तो मूड कतर के हाथ में दे दूँ हरामजादी का। राँड़ अब कभी नहीं अकड़ेगी। अपनी आज की बहादुरी पर वह बड़ा प्रसन्न था।

धीरे-धीरे रात गहरी होने लगी और गोवर्धन की दूकान मनुष्यों से भरती गई। चुन्नीलाल की आँखों में सपने तैर रहे थे। यदि आज उसके लगाये भाव पर भाव खुला तो बस किस्मत चेत जायेगी। उस राँड़ सीता के मुँह पर दे मारेगा। नौकर रख सकता है वह, हुँह!

घड़ी में बारह के टंकारे के साथ ही फोन की घंटी घनघनाई, चुन्नीलाल के शरीर की सारी चेतना उसके कानों में आकर इकट्ठी हो गई। आशा-निराशा के झूले में झूलता वह आँखें फाड़-फाड़

कर गोवर्धन की ओर देखने लगा; बड़े मन, बड़ी आशा से भगवान् को गुहराया था उसने आज। "तो मारा।" चुन्नीलाल उछल पड़ा।

भाव सचमुच आज पौने दो रुपये पर खुला था। चुन्नीलाल भरे बाजार में ही दण्डवत के लिए झुक गया—"हे भगवान्! तेरी जय हो, जय हो। इत्ती बार खोया, आज छप्पर फाड़ कर दे दिया। कहो यारों कैसी रही?"

जो जीते, उन्होंने कहा—"खूब रही।"

जो हारे, उन्होंने कहा—"जैसी भगवान् की मरजी।"

चुन्नीलाल नाचने लगा। देखकर गणेशी को शर्म आई, पास आकर धीरे-से बोला—"के पागलपन करता है यार।"

"अबे तू हार गया तो मुझे पागल कहने लगा। बेटाजी मेरी एक जीत में ही खार खाने लगे?"

गणेशी का मुँह सूख गया—"खार क्या चुन्नी, बेसरम हूँ मैं जो तेरे यूँ बोलने पर भी तुझसे बातें करता हूँ। क्या करूँ भाया? तेरे दिन बुरे हैं, नहीं सच कहता हूँ मर जाता तब भी तेरा हाल पूछने नहीं आता।"

चुन्नीलाल ने मुँह सिकोड़ कर कहा—"अबे तो मत बोल न। कौने जोड़े है तेरे हाथ।"

कैसा थप्पड़ मारा उसने गणेशी के मन के सच्चे स्नेह पर। तिलमिलाता हुआ वह चला गया। गोवर्धन ने हिसाब किया। पाँच की जगह चालीस रुपये चुन्नीलाल के हाथ पर रख दिये, साथ ही कहा—"मेरे रुपये दे दे चुन्नीलाल। आज तेरे पास है तो दे ही दे, कल का कौन भरोसा करे।"

तब चुन्नीलाल ने एक ठंडी साँस भरी। गोवर्धन से लिये बीस रुपयों की बात वह भूल ही गया था। स्वयं गोवर्धन ने भी कभी

नहीं माँगे थे, आज माँगे तो उसकी छाती पर चोट-सी लगी। वाहरी क़िस्मत, रंग लाते ही बे-रंग हो गई—"काट ले भाया।"

बीस रुपये काट कर गोवर्धन ने बाकी के रुपये चुन्नीलाल को दे दिये पर ये रुपये जाते समय नहीं लगा। पाँच-छः दिन में ही फिर कंगाल हो गया। एक बार झिझक खुली तो चुन्नीलाल निडर हो गया। लूट-खसोट करके वह सीता का एक-एक पैसा लेकर सट्टे में फूँकने लगा।

मार-पीट तो अब आये दिन की बात हो गई थी। सीता ने इसे नित्यकर्म की तरह आवश्यक समझ लिया, तो मन को जैसे शान्ति मिल गई। वैसे यह उसका सौभाग्य था कि चन्दा को अभी तक इसका ज्ञान नहीं था। वह आजकल इतनी व्यस्त थी 'स्टडी' में कि किसी भी बात की ओर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं था उसके पास। सीता के शरीर पर कितनी नीली-नीली धारियाँ उभरीं, उसे मालूम नहीं। उसे तो बस एक ही धुन, एक ही लगन थी। प्रथम आना और नौकरी करना। अपने बर्बाद हो रहे छोटे-से घर को फिर से मुस्कराता देखने की तमन्ना उसके प्राणों में बसी हुई थी।

"ए चन्दा!"

दोपहर ढल रही थी और चन्दा चारों तरफ फैले किताबों-कापियों के समुद्र में डूबी-डूबी बोली—"हाँ।"

किरण ने उसकी किताब पर हाथ रख दिया, रूठकर बोली—"इतना भी क्या पढ़ना चन्दा। दो मिनट बात करने की भी तुझे फुरसत नहीं मिलती, भई, मैं दुआ करती हूँ कि तुझे फर्स्ट क्लास मिले, नौकरी मिले; पर कभी दो मिनट बात भी तो कर लिया कर।"

"थ्री प्लस सेवन....लेकिन किरण के भाव भरे स्वर ने प्लस-

माइनस खाक में मिला दिये। चन्दा ने किताब नीचे रख दी, हँसती हुई बोली—"अच्छा नहीं पढ़ूँगी, तेरी खातिर आधा घंटा कुर्बान किया।"

किरण ने चन्दा के मुँह की ओर देखा तो व्यथित हो गई, पीड़ित स्वर में बोली—"हायरे, जरा अपनी सूरत तो देख काँच में, कित्ता-सा मुँह निकल आया है। चल ऊपर।"

चन्दा ने प्रतिवाद किया; पर ऐसे प्रतिवाद को किरण कब माननेवाली थी, खींचकर उसे ले ही गई। लाख मना किया, पर चन्दा को चाय भी पीनी पड़ी, आलू बड़े भी खाने पड़े। सबेरे से भूखी थी, पेट में अन्न गया तो शरीर में जैसे जान आ गई। अक्सर ही घर में चूल्हा नहीं जलता। भूख लगने पर पेट भर पानी पी लेने का अच्छा अभ्यास कर लिया था चन्दा ने। सीता ऐसे समय घर से इस तरह गायब हो जाती कि उसकी परछाईं भी चन्दा पकड़ न पाती। बस एक चुन्नीलाल था जो रोज समय पर रोटी माँगता; मिलती तो भरपेट खाता, न मिलती तो बजार में रामजी भाई से उधार ले साग-पूड़ी खा आता। घर में न वह कभी पूड़ी लाया और न कभी चन्दा या सीता ने उससे लाने को कहा ही। उसका 'मनुष्य' मर गया था वरना क्या कभी ऐसा हो सकता है कि 'बेटी' भूखी रहे और बाप बजार में पूड़ियाँ उड़ाये?

किरण आत्म तृप्ति से हँसी। चन्दा को खिलाकर बहुत सुख मिलता था उसे। बोली—"अच्छा, अब तेरी छुट्टी, पढ़ जाकर। दस दिन रह गये 'एक्जाम' के। अपनी नैया देखें किनारे लगती है या नहीं।"

चन्दा ने मारे स्नेह के उसे बाहों में खींचकर कहा—"जरूर लगेगी किनारे। मैं सच्चे मन से कामना करती हूँ और जानती हूँ,

जो कामना सच्चे मन से की जाये वह जरूर पूरी होती है। अच्छा, अब जाऊँ ?" और बड़े स्नेह से किरण को प्यार करके चन्दा नीचे उतर गई।

—:०:—

: १५ :

रामजी भाई का चारा समाप्त हो चुका था। काँटा जब अच्छी तरह मछली के गले में फँस चुका, तो उसने उसे खींचा—"ए चुन्नी ! आज-कल करते-करते महीनों निकल गये, तेरी नौकरी भी छूट गई, बता अब किस भरोसे पर तुझ पर एतबार करूँ ?"

चुन्नीलाल ने हाथ जोड़ दिये, मुस्कराने का प्रयत्न कर कहा—"सो तो मैं भी किस मुँह से कहूँ भाइजी। मैं तो आपकी किरपा पे ही जिन्दा हूँ।"

रामजी भाई ने सिर हिला दिया, बोला—"नहीं भाया, पैसे के मामले में भाई भी भाई पर किरपा नहीं करे, मैंने तो बहुत छोड़ा है तेरे को, कभी एक पैसे के लिये नहीं कहा; पर भाया अब बस, तू मेरा हिसाब साफ कर दे।"

चुन्नीलाल की छाती में कहीं 'धक्' से हुआ, मुँह उतर गया, बोला—"सो कोई मैं मना थोड़ी करता हूँ। पैसा आते ही सबसे पहले आपको ही दूँगा।"

रामजी भाई का मन पैसे पर तो था नहीं, वह तो चन्दा पर आँख लगाये हुए था। बड़ी इतराई थी लौंडिया उस दिन, बड़ा गुमान करे थी। भाई था, साला गुण्डा, जैसी करी वैसे ही भरा या कहीं बिला गया ? देखूँ, कौन बचावे अब उसे। बोला—"नहीं

भाया छोरी का बियाव है, मेरे को पैसे की बड़ी सखत जरूरत है। तू सात दिन के अन्दर मेरा कुल पैसा, तीन सौ तीस रुपया चुकता कर दे, नहीं फिर, याद है न मेरी सरियत।"

"सरियत, यानी, यानी कि....कि...." चुन्नीलाल की जबान बुरी तरह लड़खड़ा गई।

चन्दा का चेहरा कल्पना में उभरा तो रामजी भाई के मोटे, थुलथुले शरीर में रस भर आया, बोला–"हाँ भाया! वही सरियत और तू जान, कोई यों तो तेरे को बेटी देने को कहा नहीं है मैंने। मैं ठहरा जैन, तू है माली। तेरे से बहुत ऊँचा कुल है मेरा और भगवान् की दया से खाने-पहिरने की भी कमी नहीं। राज करेगी तेरी चन्दा, तेरा सारा करजा माफ कर दूँगा समझा!"

चुन्नीलाल के ओठ काँपे अवश्य पर वह कुछ बोल नहीं पाया।

इस बार रामजी भाई ने जल्दी से मन की बात कह दी— "सोच ले, सात दिन की मुहलत देता हूँ तेरे को, बस फिर चन्दा मेरी हो जायेगी।" कह कर चल दिया।

चुन्नीलाल प्रस्तर-प्रतिमा की तरह निस्पंद खड़ा रह गया। रामजी भाई यह क्या कह गया। तीन सौ तीस रुपया, या फिर चन्दा! इतना रुपया और मोहलत दी सिर्फ सात दिन की। कहाँ से लायेगा इतनी बड़ी रकम। उधार तो कोई देगा नहीं, जुआ खेलने पर भी इतना रुपया जीत नहीं सकता, तो फिर, तो फिर और इसके आगे चुन्नीलाल कुछ सोच नहीं सका। उसका सारा शरीर काँप गया। पानी सिर से इस तरह गुजरा कि चुन्नीलाल भागने का अवसर भी नहीं पा सका। अब तक रामजी भाई ने कठोरता से रुपयों की माँग नहीं की थी और वह सोचा करता था, आज नहीं तो कल जरूर जीतेगा और उसकी एक-एक पाई चुका देगा। पर वह कभी न जीता और जीता भी तो दूसरे दिन

फिर हार गया और इस तरह वह कभी अपने सिर का कर्जा नहीं उतार पाया। घर में फूटी कौड़ी नहीं थी, जेवर तो जेवर, बर्तन-भांड़े तक बेचकर वह जुआ खेल गया था।

गोवर्धन ने उसे शराबियों की तरह लड़खड़ाते देखा, तो संदेह से भरकर बुलाया—"जरा सुन तो चुन्नीलाल!"

चुन्नीलाल चलता-चलता रुक गया और अपनी निस्तेज आँखें उठाकर गोवर्धन की ओर देखा। बड़ी पीड़ा, बड़ी आत्मग्लानि भरी थी उसकी उन बूढ़ी आँखों में। गोवर्धन ने देखा तो उसके मन में कुछ दया-सी उत्पन्न हुई, पूछा—"घर जा रहा है?"

चुन्नीलाल सिर झुकाये आगे बढ़ गया।

घर पहुँचने पर चन्दा ने ध्यान से चुन्नीलाल के मुँह की तरफ देखा। कैसा निस्तेज, कितना लुटा-लुटा-सा लग रहा था उसका खूँटे भरा मुँह, चिन्तित होकर बोली—"तबियत तो ठीक है न बापू?"

चुन्नीलाल की आँखें भरने-भरने को हो गईं पर वह जबर-दस्ती की मुस्कराहट मुख पर खींच लाया, बोला—"ठीक ही है बेटा! तेरी माँ आ गई?"

चन्दा ने प्यार से पिता को बैठाकर कहा, "आखिर तुम सट्टा क्यों खेलते हो बापू?"

चुन्नीलाल के मुँह से निकल गया—"रुपये के लिये।"

सुनकर चन्दा का दुलार भरा स्वर भावहीन हो गया—"झूठ है बापू। जुआ रुपया नहीं अशान्ति उत्पन्न करता है, घर को बर्बाद कर देता है, आग लगा देता है भरी-पूरी गृहस्थी में। तुम्हें नहीं दिखाई देता यह सब? कैसा था हमारा घर और आज क्या दशा हो गई है हमारी। माँ लोगों की जूठन धो रही है, तुम्हारा 'मानव' मर गया है। यही दिया है न तुम्हारी इस

लत ने हम सभी को? छोड़ क्यों नहीं देते इस सत्यानाशी चस्के को।"

चुन्नीलाल की छाती में कुछ टूट रहा था, निराशा भरे स्वर में धीरे से बोला—"शराबी से शराब और सटोरिये से सट्टा, मरने पर ही छूटे हैं चन्दा! मैं कोशिश करूँ तब भी इसे नहीं छोड़ सकता बेटा।"

चन्दा का मुख आवेश के मारे तमतमा गया—"नहीं क्यों छोड़ सकते। किसी की जबरदस्ती नहीं है इसमें, किसी का लेना-देना भी नहीं जो इसे छोड़ने में डर लगे तुम्हें, मनुष्य चाहे तो क्या नहीं कर सकता बापू?"

चुन्नीलाल ने दुखी भाव से सिर हिला दिया—"नहीं कर सकता बेटा, नहीं कर सकता। तू नहीं जानती चन्दा, मैं गले तक करजे में डूबा हूँ। बचने का एक ही रास्ता है मेरे पास कि मैं बार-बार खेलूँ। पैसा तो दाँव लगाने पर ही मिलेगा वरना यह कर्जा मैं कैसे उतारूँगा?"

"कर्जा।" चन्दा स्तम्भित रह गई—"कैसा कर्जा?"

चुन्नीलाल की आँखों में रामजी भाई का मोटा भद्दा चेहरा तैर गया और उसकी शर्त का स्मरण होते ही वह एक बार फिर बुरी तरह से काँप गया। वाणी उसकी इस तरह रुँधी कि मुँह से एक भी बात न निकली।

चन्दा अधीर होकर बोली—"बोलो बापू, किसका कर्जा, कैसा कर्जा।"

गला दबाने पर जैसा घुटा-घुटा स्वर निकलता है, मुख से वैसा ही घुटा-घुटा स्वर इस बार चुन्नीलाल के मुँह से फूटा—"रामजी भाई का कर्जा, सट्टे में हार गया बेटा।"

"बापू!" रामजी भाई का नाम सुनकर चन्दा को काठ मार

गया। कमीना कितना नीच, कितना ओछा है। कैसी गन्दी बातें की थीं उस दिन। यही नहीं कभी सामने पड़ जाये, तो कैसे गन्दे-गन्दे इशारे करता है। उसी गुण्डे का कर्ज़ लिया चुन्नीलाल ने। चन्दा मन-ही-मन सहम गई, बोली—"कितना कर्जा है ?"

"तीन सौ तीस रुपये।"

"तीन सौ तीस !" चन्दा की आँखें फट गईं—"यह तो बहुत ज्यादा है बापू, कैसे चुकाओगे ?"

यही तो समस्या थी चुन्नीलाल के सामने। सट्टे के चस्के ने बेटी और कर्जे को एक तराजू पर चढ़ा दिया था। वह अब क्या करे। भींगी निगाहों से चन्दा को देखने लगा।

"तीन सौ तीस।" चन्दा ने फिर दोहराया, हठात् ही उसे कुछ याद आया तो बोली—"जरा ठहरो, माँ के पास चाँदी की दो-चार चीजें हैं शायद। उन्हें बेचकर थोड़ा बहुत-कर्ज तो एक बार साफ कर दो, बाकी का बाद में उतार देंगे। पर कसम है, जो आगे से तुमने ये धन्धे किये।"

सीधी दृष्टि से देख रहा था चुन्नीलाल। जेवर की बात आते ही उसकी दृष्टि झुक गई। जेवर ! जेवर तो पहले ही बेच दिया उसने, पर चन्दा से कैसे कहे।

चन्दा उठने लगी कि सीता आई, मुख उसका एकदम सूख गया था। देखते ही चन्दा चौंक पड़ी। पढ़ाई की धुन में इतने दिन से ठीक से देखा ही नहीं था सीता का चेहरा। कितनी बार निराहार रह गई, कितनी बार रोई इस पर ध्यान ही नहीं गया उसका। उसे तो बस एक पढ़ने की ही धुन थी, मनुष्य जब तक किसी काम में व्यस्त रहे, अपने आसपास की किसी भी बात पर उसका ध्यान नहीं जाता और जब जाता है तो वह कराह उठता है। कितना सूना, कैसा लुटा-लुटा-सा लग रहा था सीता का मुख।

तभी चन्दा की दृष्टि सीता के सिर पर गई, चौंककर पूछा—"तेरे माथे का बोर कहाँ गया ?"

पल भर के लिये ठिठक कर सीता ने चुन्नीलाल को देखा, फिर रसोई में जाती हुई काँपते स्वर में कह गई—"तेरे सामने बैठा तो है ले जानेवाला।"

पोल खुल गई थी। चुन्नीलाल जल्दी से बोल पड़ा—"हाँ बेटा, जेवर सब मैंने बेच डाले हैं।"

"सब !" चन्दा को फिर एक धक्का लगा।

"सब बेटा, सब। तभी तो कहता था अब कोई उपाय नहीं है और अब तो रामजी भाई ने सात दिन की मोहलत दी है। इन दिनों में उसका कर्जा नहीं उतारा वह तुझे अपने घर बिठाने की बोले है !"

चन्दा सुनकर इस तरह छटपटाई जैसे उबलता तेल डाल दिया हो किसी ने शरीर पर—"क्या ?"

चुन्नीलाल ने दोनों हाथों में मुख छिपा लिया। चन्दा को मुँह दिखाने का साहस नहीं था उसमें।

चन्दा को छाती में उफान आ गया। वह मारे उत्तेजना के हाँफने-सी लगी। यह क्या कर दिया था चुन्नीलाल ने ! उसकी इज्जत को कौड़ियों के भाव नीलाम कर रहा था। वही बापू था न यह जिसके लिये कितनी ममता, कितना स्नेह था उसके हृदय में। चन्दा का सिर चकरा गया, उसे किशन की याद आई। हाय रे किशन दादा, तू कहाँ चला गया। तेरे होते किसकी मजाल थी जो ऐसी घृणित बात कह सकता तेरी चन्दा के लिये और आज फिर, इतने दिन बाद किशन की याद कर चन्दा रो उठी। चन्दा को रोते देखा तो चुन्नीलाल का मुँह जरा-सा निकल आया। उसके वे आँसू तीर की तरह उसकी छाती के आरपार हो गये।

उसकी इतने दिन से सोई ममता रामजी भाई की एक ही ठोकर से तिलमिला गई। चन्दा को वह प्राणों से अधिक प्यार करता था। पता नहीं कैसे इतने दिन तक मूर्छित-सा रहा उसका वह प्यार।

"बेटा !" चन्दा के आँसू जब देखे नहीं गये तो खुद ही रो दिया, फिर वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

बहुत देर तक रोती रही चन्दा। अपने अभाग्य पर यों ही कौन कम तड़पना था। हृदय पर फिर इस चोट की क्या आवश्यकता थी। टूटे मन को फिर एक चोट लगी तो कराहने की भी शक्ति कहीं सो गई जैसे। बार-बार बरसने को तैयार आँखों को पानी से अच्छी तरह धोकर वह रसोई में आई।

सीता गरम-गरम रोटी हाथ पर मलती हुई बोली--"परोसूँ थालो ?"

भींगी आँखें कहीं माँ देख न ले इस डर से मुँह फिराकर चन्दा ने उत्तर दिया--"भूख नहीं है।" फिर अपने को सम्हाल कर कहा--"अच्छा माँ, क्या कोई तुझे तीन सौ रुपये उधार दे सकता है ? दो एक महीने बाद तो मुझे भी नौकरी मिल ही जायेगी, फिर धीरे-धीरे उतार देंगे।"

सुनकर सीता के मुखपर फीकी मुस्कान तैर गई--तीन सौ रुपये। उधार के नाम तीन टके भी नहीं देगा कोई।"

"पर हम चुका देंगे माँ !"

"सो मैं कब कहूँ कि नहीं चुका देंगे, पर बिना जमानतगी के उधारी मिलना मुसकिल है। भाई भाई का विस्वास नहीं करे आजकल। जमानतगी के लिये रखा ही के है मेरे पास। पर तू इत्ते रुपयों का करेगी के ?"

सच बात छिपा ली चन्दा ने--"कुछ नहीं यों ही माँग रही

थी।" फिर इस डर से कि सीता कहीं बात को पकड़ कर बहस न करने लगे, जल्दी से बोली--"अच्छा, परस दे थाली।"

सीता ने थाली परोस कर दे दी। चन्दा धीरे-धीरे जहर के घूँट जैसे निगल रही थी। थोड़ा-सा खाकर ही उठ गई, बोली---"मैं अभी आई माँ, जरा किरण के पास हो आऊँ।" और फिर सीता के उत्तर की अपेक्षा किये बिना ही भागती हुई सीढ़ियाँ चढ़ गई।

किरण रोटी खा रही थी सो चन्दा को उसकी प्रतीक्षा करनी पड़ी। बड़ी बेचैनी से वह कमरे में चक्कर काट रही थी। एक-एक पल एक-एक युग-सा हो गया था उसके लिये। समय जब कटा ही नहीं किसी तरह, तो वह बिना मतलब किरण की किताबें-कापियाँ उलट-पुलट करने लगी। अचानक ही उसके हाथ में एक लिफाफा आ गया। सुरेश का लेख पहचानती थी वह, लिखावट पर दृष्टि जाते ही उसके मुँह पर सुर्खी आ गई। दूसरे का पत्र पढ़ना पाप था। चन्दा ने बहुत रोका अपने को, फिर विवश हो गई। खुले लिफाफे में से उसने कागज निकाला, खोला तो पत्र के बीच में रखे सुरेश के चित्र पर उसकी दृष्टि ठहर गई। कितना सुन्दर खिचा था चित्र। चन्दा तो देखते-देखते ऐसी खोई कि किरण के आने का उसे पता ही नहीं चला।

किरण ने पीछे से ही उचक कर देखा, उसकी आँखों में शरारत नाच गई, धीरे-से बोली---कहा है किसी ने :

"गई जो नजर उन पर तो बेनजर हो गई।
कभी वह उनमें, कभी उनके तसव्वुर में खो गई॥"

चन्दा पर जैसे घड़ों पानी पड़ गया। वह पसीने-पसीने हो गई। मारे घबराहट के उसके हाथ से चित्र छूटकर नीचे जा गिरा।

चन्दा घबराई तो किरण ने फिर छेड़ा—"देख ले, देख ले। देखने के पैसे नहीं लगते।"

चन्दा का मुँह मारे लज्जा के लाल हो गया, फिर झुक गया। मजाक किया था किरण ने; पर उसकी तो छाती धौंकनी के समान चलने लगी थी।

किरण हँस पड़ी--"चोरी-चोरी देखने में बड़ा मजा आता है, क्यों चन्दा ! चित्र तो देख ही लिया, पत्र भी पढ़ ले।"

चन्दा वैसे ही खड़ी रही। किरण ने मुस्करा दिया--"अच्छा जा, छोड़ दिया तुझे। तेरे रोने से डर लगता है, नहीं वो गत बनाती मरी की कि याद करती। तेरा जो चित्र बनाया था मैंने, वो मैंने दादा को भेज दिया।"

इस बार स्वर फूटा चन्दा का—"क्यों भेजा ?"

"मन मेरा।" किरण मुँह बिगाड़ कर बोली, फिर हँस दी--"लिखा है दादा ने कि तेरे इस तोहफे को मैंने अपने पलंग के सामने, दीवार पर लटका दिया है। रोज उठते ही उस पर निगाह पड़ती है तो दिन बड़ा अच्छा गुजरता है।" कह कर हँसी—"मुझे बड़ा मजा आया पढ़कर।"

चन्दा ने कोई उत्तर नहीं दिया। झुके-झुके पैर के अँगूठे को जमीन पर रगड़ने लगी।

किरण बोलती गई—"सारे पत्र में बस तेरी ही बातें भरी पड़ी हैं। माँ या बाबूजी कभी पढ़ लें; तो बाप रे, तूफान आ जाये घर में।"

चन्दा का सिर और भी झुक गया।

"अरे वाह ! तू तो जैसे गूँगी हो गई।" कहकर उसने दोनों हाथों में उठाकर उसका मुँह ऊपर कर दिया—"यह क्या, तू रो क्यों रही है ? चल हट मरी, अब कभी दादा की बात नहीं करूँगी

तेरे सामने। वे तो इतना चाहते हैं तुझे और तुझे इतना बुरा लगता है उनका नाम कि बात करते ही रोने लगती है।"

किरण ने उल्टा ही समझा तो चन्दा ने क्षीण स्वर में प्रतिवाद किया—"मैं इसलिए नहीं रोई थी किरण। अब तुझे क्या बताऊँ कि...." और उसने चट से दाँत से अपनी जबान काट ली। हाय, भावनाओं में बहकर वह आज अपनी किस निर्बलता को प्रकट करने जा रही थी।

दो क्षण बाद बात बदलकर बोली—"तू मेरी कुछ मदद कर सकती है किरण!"

"कैसी मदद?"

"मुझे तीन सौ रुपये उधार दे सकती है?"

"तीन सौ!" किरण हत्‌बुद्धि-सी रह गई।

"हाँ किरण, तीन सौ, और वह भी एक सप्ताह के अन्दर।"

"अरे वाह, एक नहीं दो नहीं, पूरे तीन सौ। आखिर करेगी क्या इतने रुपयों का?"

"किसी का कर्ज है, उतारना है। नहीं उतरा तो मुझे बिकना पड़ेगा।" किरण से लिपट कर चन्दा फिर रो पड़ी।

किरण घबरा गई। उसकी उम्र चन्दा के बराबर अवश्य थी; पर चोट और व्यथाओं ने चन्दा को जहाँ उम्र से अधिक वृद्ध बना दिया था, निर्द्वन्द्व जीवन ने किरण को भोली बालिका ही रहने दिया था, बोली—"बिकना कैसा?"

"बिक्री, अपनी इज्जत की, अपनी हर चीज की।"

"अरे वाह, यह भी कोई बात हुई।" किरण फिर भी कुछ नहीं समझ सकी और टुकुर-टुकुर चन्दा का मुँह ताकने लगी।

चन्दा का यह सहारा भी टूटने लगा तो वह हताश हो गई। वेदना के मारे उसका मुँह पीला पड़ गया। हे भगवान्! क्या यही लिखा है उसके भाग्य में।"

अचानक ही किरण उछली—"ये लो, यह तो मुझे ख्याल ही नहीं आया पहले। मैं अभी दादा को लिखती हूँ। वे जरूर भेजेंगे रुपये। फिर तू पूरी बात तो बता।"

चन्दा ने धीरे-धीरे पूरी बात किरण को सुना दी, फिर मुँह झुकाये हुए चली गई। किरण ने उसी समय सुरेश को लिखा... "सो दादा चन्दा को इस मुसीबत से बस तुम्हीं बचा सकते हो। उसके घर की हालत क्या बताऊँ तुम्हें, उस बेवकूफ चुन्नीलाल ने यह हाल कर दिया है कि सीता को दूसरों के बर्तन माँजने पड़ रहे हैं और आये दिन घर में फाके हो रहे हैं। खैर, बात सिर्फ तीन सौ रुपयों की है। सात दिन के अन्दर-अन्दर यह रुपया तुम जरूर से भेज देना।"

साधारण के स्थान पर एक्सप्रेस से किरण ने यह पत्र भेजा और तभी से डाकिये की राह में आँखें बिछाकर बैठ गई।

—:o:—

: १६ :

चुन्नीलाल ने घर से निकलना छोड़ दिया, सीता को उसकी इस हरकत पर बड़ा आश्चर्य था। नौकरी छोड़ने के बाद से चुन्नीलाल कभी घर में टिका नहीं था, रोटी खाने और सोने के लिये आता था। कोई मरे तो उसकी बला से, भूखा रहे तो उसकी बला से। बात-बात पर जो चुन्नीलाल लाल-लाल आँखें करके सीता को मारने दौड़ता था वह अब उसे देखते ही अपने-आप में इस तरह सिकुड़ जाता कि सीता परेशान हो उठती थी। इधर चन्दा भी बड़ी चुपचाप रहती थी। सीता की समझ में बाप-बेटी दोनों का ही यह व्यवहार नहीं आ पाता था। उस पर मुहल्ले की औरतों की हरकतें देखकर तो उसकी परेशानी और भी बढ़ गई थी। उसी

देखते ही नल पर पानी भरने के लिये इकट्ठी हुई औरतें एक-दूसरी को आँखें मार-मार कर काना-फूसी करने लगतीं और सीता पसीने-पसीने हो जाती। चुन्नीलाल क्या कर चुका था, इसका उस गरीब को पता ही नहीं था। औरतों का आँखें मटकाना देखकर उसे यही लगता कि फटे लुगड़े में से कहीं उसके छिपे अंग झाँकने लगे हैं; सो घबराकर वह फटे कपड़ों को अपने शरीर के चारों ओर लपेटती हुई, सिर झुकाकर जल्दी-जल्दी वहाँ से चल देती।

"ए रामू की माँ, सुणी के तूने? अरी उस सटोरिये ने छोरी बेच दी रे अपणी।"

म्यूनिसिपल नल के पास सीता पहुँची ही थी कि किसी ने फिकरा कसा।

"है भी तो छोरी रूप की राणी, चोखे टके मिल गये चुन्नीलाल को।"

सुनते ही सीता अपने पर कही गयी इस व्यंगोक्ति को समझ गई। उसे लगा जैसे किसी ने जलता हुआ सीसा कान में भर दिया हो। जाती-जाती वह तड़पकर रुक गई। लाल-सुर्ख चेहरे से बोली—"कीने (किसने) कही या बात?"

फिकरा कसनेवाली इस गली की सबसे जबानदाज औरत घनियाँ थी, जिसके मारे औरतें तो औरतें मर्द भी थर्राते थे। सीता की बात सुनकर उसने कमर पर टिका घड़ा पत्थर पर रख दिया और दोनों हाथ अपनी कमर पर रख उसके सामने आकर खड़ी हो गई। लड़ाई का बहाना भर चाहिए घनियाँ को। कहा—"मैंने कही, विश्वास न हो तो अपणे खसम (पति) से जाकर पूछियो, कांगरे-कांगरे, (कोने-कोने) बात फैल गई और या नाटक कैसो दिखा रही है जे सुणी नहीं हो।"

जिस दिलेरी से घनियाँ ने तीर छोड़ा था उसकी उम्मीद नहीं थी सीता को। काम पर जा रही थी, सो वापस पलटकर घर की ओर भागी।

चुन्नीलाल पूजा पर बैठा था। पूजा करते समय औरत की देह न छूने का नियम मालूम था सीता को; पर उस नियम को आज वह भूल गई। बुरी तरह हांफते उसने चुन्नीलाल को दोनों हाथों से पकड़कर झिझोड़ डाला—"बोल, सच्ची है या बात?"

चुन्नीलाल का हाथ कांप गया। पूजा की थाली झन्न से पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसके मुख का रंग उड़ गया, बड़ी मुश्किल से पूछा—"कौन-सी बात?"

सीता आंधी में कांप रहे पत्ते की तरह कांप रही थी—"ये ही के तुमने चन्दा बेच दी।"

चुन्नीलाल के पास इसका क्या उत्तर था, वह बगलें झांकने लगा।

सीता आग में जैसे जल रही थी, छटपटाती हुई चिल्लाई—"नीच, कमीने, राक्षस। ऐसी बात करते मौत नहीं आई तेरे को, कीड़े नहीं पड़ गये तेरे मुँह में?"

चुन्नीलाल का मुँह पीला पड़ गया, बोला—"पर-पर चन्दा की माँ, मैंने थोड़ी बेची है चन्दा, वह तो रामजी भाई ने बोला था।"

"क्यूँ?" सीता घायल शेरनी की तरह तड़पी।

चुन्नीलाल इस स्वर से कांप उठा, हकलाकर बोला—"भाईजी के तीन सौ तीस रुपये उधार हैं मेरे पे।"

"क्यूँ लिए उधार?"

चुन्नीलाल की गर्दन दबाकर जैसे कोई कहला गया—"उधार लिये नहीं, सट्टे में हार गया। सात दिन में रुपये चुका दूँ, तो वह कुछ नहीं बोलेगा।"

तभी ऊपर से उतरकर चन्दा आई। कुछ सुना नहीं था उसने, पर देखने से ही वह समझ गई कि सीता को भी पूरी बात का पता चल गया है। उसकी देह सुन्न-सी पड़ गई, भयभीत नेत्रों से

वह सीता के राख की तरह फीके हो गये चेहरे को देखने लगी। सीता ने पलकें झपकायीं तो ढेर-सा अन्धकार आँखों में भर गया। उसने दोनों हाथ आगे बढ़ाकर कोई सहारा ढूँढ़ना चाहा और फिर सब शून्य हो गया। बेहोश होकर वह जमीन पर गिर पड़ी।

चन्दा आर्तकण्ठ से 'माँ री!' कहती दौड़ी। निचले ओंठ में दो दाँत गड़ गये थे। सीता के मुख से खून टपकने लगा था। चन्दा ने सीधा करके उसका सिर हाथों में लिया, तो छाती फाड़कर रो पड़ी—"यह तुमने क्या किया बापू!"

चुन्नीलाल के पैर थर-थर काँपने लगे। फटी-फटी आँखों से मूर्छित सीता को देखता हुआ वह जमीन पर बैठ गया। कुछ करने की शक्ति ही नहीं रही थी उसमें।

चन्दा ने सीता का सिर जमीन पर ही टिका दिया; फिर रोती हुई एक गिलास में मटके का पानी भर लायी। पानी के छींटे सीता के मुँह पर मारती हुई वह हिचक-हिचक कर बोली—"इतनी कम-जोर मत बन भी, इतनी-सी बात ही सहन नहीं हुई तुझसे! मुँह क्या देख रहे हो, पंखा करो बापू।"

चुन्नीलाल कोने में से पंखी उठा लाया और प्राणपण से झलने लगा।

सीता की पलकें जरा-जरा-सी झपकने लगीं। चन्दा ने इसी डर के मारे कि सीता का टूटा मन इस आघात को कभी सह नहीं पायेगा, अभी तक इस बात को उससे छिपा रखा था। पता नहीं किसने कही थी उससे यह बात। उसके ओंठों से टपकते खून को अपनी साड़ी से पोंछते हुए रोकर बोली—"माँ को इसका कैसे पता चला बापू?"

चुन्नीलाल भर्राए स्वर में बोला—"मालूम नहीं बेटा। काम पर गई थी, मैं पूजा कर रहा था कि यह आ गई। बाहर ही सुनी होगी।"

कहना न चाहकर भी चन्दा के मुँह से निकल गया—"देख लिया अपने काम का परिणाम बापू। दादा चला गया पर तुम न चेते। नौकरी छूट गई, तब भी तुम नहीं चेते और अब जब कि हमारी तिनके-सी इज्जत नीलाम पर चढ़ने लगी, तो अपनी भूल अनुभव होने लगी तुम्हें। क्या कर दिया तुमने बापू!!" चन्दा की छाती कहते हुए फट गयी।

चुन्नीलाल की आँखें झुक गईं। सच ही तो कहती है चन्दा। किशन गया, नौकरी छूटी, इज्जत बिगड़ी; पर वह नहीं चेता। अब चेतने से भी क्या होगा! रह गये हैं केवल दो दिन। कहाँ से आएँगे इतने रुपये? क्या होगा चन्दा का? हे भगवान्!

काँपकर उसने दोनों हाथों से अपनी आँखें बन्द कर लीं।

—:०:—

: १७ :

सीता की चेतना तो लौटी पर, इस घटना का इतना गहरा आघात पहुँचा उसके मन पर कि वह निष्प्राण होकर रह गई। न कुछ बोलती थी, न खाती थी और न ही रोती थी। चन्दा ने दिन-रात एक कर दिया, घण्टों बैठ-बैठ कर उसे समझाया; पर सीता तो कुछ बोलती ही नहीं थी; आँखें बन्द करके पड़ी रहती थी।

चुन्नीलाल का साहस नहीं होता था उसके सामने आने का। वह दूर-दूर से उसे उदास-उदास आँखों से ताका करता था। गणेशी कितनी बार आ-आकर लौट गया था; पर वह किसी को मुँह नहीं दिखाना चाहता था। दिन भर मुँह लपेटे मुर्दे की तरह पड़ा रहता था।

आज मियाद का अन्तिम दिन था। रामजी भाई ने कल ही अपना एक आदमी भेजकर कहला दिया था कि कल वह आयेगा,

चुन्नीलाल तैयार रहे। चन्दा ने सुन लिया, कुछ कहा नहीं कि चुन्नीलाल फूट-फूटकर रो पड़ा।

किरण हर घड़ी, हर पल डाकिए की राह में आँखें बिछाए बैठी थी। पर सुरेश का न तो कोई पत्र ही आया, न रुपये ही आये। किरण मन-ही-मन बुड़बुड़ाती—"वाह रे, यह भी कोई बात हुई, लिखते तो कितनी बड़ी-बड़ी बातें थे। अब तीन सौ रुपये भेजने में ही जान निकल गई!"

पर चन्दा न ऊपर कुछ कहती न मन में। निर्जीव, निस्पन्द पुतली की तरह वह होनी के आगे घुटने टेक चुकी थी। अब कोई दुःख, कोई पीड़ा नहीं थी उसके मन में। किरण देख-देखकर दुःखी हो जाती थी, आखिर सवेरे ही उसने अपनी माँ और शर्मा जी को सारी बातें बता दीं। शर्माजी तो सुनकर चुप रह गये; पर किरण की माँ ने उसी समय अपने गले की चेन उतार कर किरण के सामने फेंक दी, बोली—"दौड़ के सोनी के यहाँ चली जा। छह तोले की चेन है मेरी, तीन सौ से जादा तो मिल ही जायँगे। दौड़ जा बिटिया!"

शर्माजी कुछ कह ही नहीं पाये। चेन मुट्ठी में दबाए किरण तीर की तरह दौड़ गयी।

किसी ने किवाड़ खटखटाए। चन्दा ने उठकर किवाड़ खोल दिए। बाहर, ठीक आँखों के सामने सफेद मलमल का कुरता और कलप लगी धोती पहने दूल्हे की तरह बना-ठना रामजी भाई खड़ा था। उसके ओठों पर पान की लाली थी और खिजाब से रँगे बाल भँवरे के रँग को भी लजा रहे थे।

चन्दा को देखकर उसकी आँखों में लालसा लहरा गई। चन्दा द्वार पकड़े एकटक उसकी ओर देखने लगी।

"आने नहीं देगी री चन्दा?"

बिना कुछ बोले चन्दा ने रास्ता छोड़ दिया। अपनी मूँछों पर हाथ फेरता हुआ रामजी भाई अन्दर चला आया। उसके मन में

लड्डू फूट रहे थे, चन्दा को देख-देख कर मुंह में पानी भरा आ रहा था, कुत्ते की तरह ओंठ चाटते हुए पूछा—"चुन्नीलाल किधर गया ?"

कोठरी की ओर इशारा करके चन्दा वहाँ से हट गई।

रामजी भाई अन्दर चला आया, पुकारा—"चुन्नीलाल !"

औंधे मुंह पड़ा था चुन्नीलाल, हड़बड़ाकर उठ बैठा—"हाँ।" पर जैसे ही रामजी भाई पर दृष्टि गई, उसका मुंह हल्दी की तरह पीला पड़ गया।

बहुत रुपये खर्च किए थे रामजी भाई ने चन्दा के लिए। चुन्नीलाल का पीला मुँह देखकर वह क्रूरता से हँसा—"हः हः हः, नहीं जुटा सका न रुपये ? मेरे सिवा स्वारथरहित होके उधारी देने-वाला इस शहर में और है कौन ? पर राजा आज से तेरी सारो उधारी खतम। अब तो तू मेरा रिश्तेदार हो जायेगा। तेरे तीन सौ तीस मैंने माफ किये, ऊपर से ये छि...." कहकर उसने कुरते की जेब से सौ-सौ रुपये के दो नोट, निकाल कर चुन्नीलाल की ओर फेंक दिये—"मेरी तरफ से नजर हैं ये तेरे को।"

फिर उसने हाथ की गठरी खोली। गोटे से लदे कपड़े चमचमा उठे, बोला—"ये कपड़े चन्दा के, यह बेस उसकी माँ के लिए हैं। इस डिब्बे में जेवर हैं। अच्छी तरह पहना-उढ़ाकर भेजना। अच्छा मैं चलूँ।"

"बैठ जाओ।" पीछे से गम्भीर स्वर सुनाई पड़ा।

"ऐं !" रामजी भाई चौंककर उछल पड़ा।

दरवाजे के ठीक बीच में, सफर से मैले हो गये कपड़े पहने सुरेश खड़ा था। उसकी छोटी-सो सफरी अटैची उसके पैरों के पास पड़ी थी और अभी-अभी बजार से भागी आ रही किरण हाँफती हुई उससे सटी हुई खड़ी थी।

"तुम्हीं हो न रामजी भाई ?"

"ऐं ? हाँ, हूं तो सही।"

"ठीक, तो फिर ये रुपये और ये गठरी हाथ में उठा लो।"

ठीक यम की तरह आ टपका था सुरेश। रामजी भाई घबरा तो गया; पर ऊपर से साहस दिखाता हुआ बोला—"क्यूँ उठाऊँ, यह मेरे और चुन्नीलाल के बीच की बात है, तू बीच में काहे कूदता है?"

सुरेश ने उछलकर रामजी भाई की गरदन पकड़ ली, गुर्राकर बोला—'तू' नहीं 'आप'। रैस्केल, बदमाश, गुंडा! लालच देकर भोले-भाले लोगों को फँसाता है? जेल में ठुँसवा दूँगा, समझा! उठा यह सब!"

रामजी भाई की घिग्घी बँध गई, भाड़ में जाये चन्दा, काँपता हुआ बोला—"उठाता हूँ, उठाता हूँ, गला तो छोड़ो।"

सुरेश वे उसके गले पर से हाथ हटा लिए। रामजी भाई ने धीरे-धीरे सारे कपड़े और जेवर समेट लिए और नोट जेब में रख-कर रोते स्वर में बोला—"चुन्नीलाल पर मेरे तीन सौ तीस रुपए उधार हैं, आप पूछ देखो।"

सुरेश गरजकर बोला—"मालूम है मुझे।" कहकर उसने पर्स खोलकर कई नोट रामजी भाई के हाथ मे थमा दिए और उसे धकियाता हुआ घर के बाहर निकाल आया—। "अब जो कभी इस तरफ का रुख किया तो सिर फोड़ दूँगा, समझा।"

जान बची और लाखों पाये। कैसी दुल्हन और कैसा ऐश! रामजी भाई सिर पर पैर रखकर भाग खड़ा हुआ।

सुरेश धीरे-धीरे जैसे ही अन्दर आया कि चुन्नीलाल कटे पेड़ की तरह उसके पैरों पर सिर रखकर लोट गया। सुरेश की आँखें भर आईं, चुन्नीलाल को उठाकर बोला—"छुट्टी ही नहीं मिली वरना जल्दी ही आ जाता। खैर, जो हुआ सो हुआ; पर अब यह काम कभी मत करना चुन्नीलाल।"

चुन्नीलाल सिसक-सिसक कर रोता हुआ बोला—"भायाजी,

इन पैरों की सौगन्ध, जो अब कभी इस रास्ते पर जाऊँ। आपने बचा लिया, कैसे इस उपकार का करज चुकाऊँगा भायाजी ?"

"कुछ पाने के लिए उपकार नहीं किया जाता है चुन्नीलाल! खैर, अभी तो जाऊँ ऊपर। बहुत थका हुआ हूँ। चल किरण!" पर किरण तो पहले ही खिसक गई थी। सुरेश हँसकर बाहर निकल आया। ऊपर सीढ़ियाँ चढ़ना ही चाहता था कि बाधा आ गई। खम्भे की ओट में छिपी खड़ी चन्दा ने नीचे झुककर सुरेश के पैरों पर हाथ रख दिए थे।

सुरेश चौंककर मुस्करा दिया, बोला—"वाह, बड़ा कायदा सीख गई है तू तो।"

चन्दा ने मुँह उठाकर देखा। कितनी भक्ति, कितनी श्रद्धा और कितना प्यार था, उस एक पल की दृष्टि में। क्षणभर देखकर ही चन्दा ने नेत्र झुका लिए।

सुरेश की सारी थकान मिट गई, बड़े ही आदर और स्नेह से चन्दा की भावनाओं के उद्रेक के कारण बर्फ़ की तरह ठंडा हुआ हाथ पलभर [illegible] उसने छोड़ दिया। फिर धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ने लगा और जब वह आँखों से ओझल हो गया तो चन्दा ने, उसी, सुरेश से स्पर्श पाये हाथ को धीरे से चूम लिया।

उसी समय दूर झरिया की एक कोयला-खदान के पास की एक खोली में बैठा हुआ एक स्वस्थ खनिक अपने घर को पत्र लिख रहा था। "बहिन चन्दा! मैंने कलम की ताकत देख ली। मेहनत करता हूँ और पैसा कमा रहा हूँ। अगले महीने शर्माजी के नाम से रुपये भेजूँगा। बापू के नाम से भेजते डर लगता है...." वह किशन था।

* समाप्त *

9588
डा. [illegible] कल्याणी [illegible] पुस्तकालय

दुर्गा प्रेस, ऽ. ९/२७१, नयीबस्ती, पो० पिसनहरिया, वाराणसी–२.

৮৯১.৪৩২
বৈ৩৫ দ

प्रचारक पॉकेट बुक्स